ज्ञानामृत

जून, 1988

वर्ष 23 ❋ अंक 12

मूल्य 1.75

लन्दन—'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम के उद्घाटन अवसर पर किलबर्न पार्क जूनियर स्कूल के बच्चों ने 'सुखमय संसार' का माडल प्रस्तुत किये। इन बच्चों के पीछे (बाएं से) अभिनेत्री ग्रेटा साची, संगीतकार टिन फिन, सर श्रीदथ रामफल, महासचिव कॉमन वैल्थ, लॉर्ड एनलज़, बिल्ली कोनॉली, हास्यकार, निक्की डे कारट्रेक्ट तथा संगीतज्ञ ज़ाकिर हुसैन।

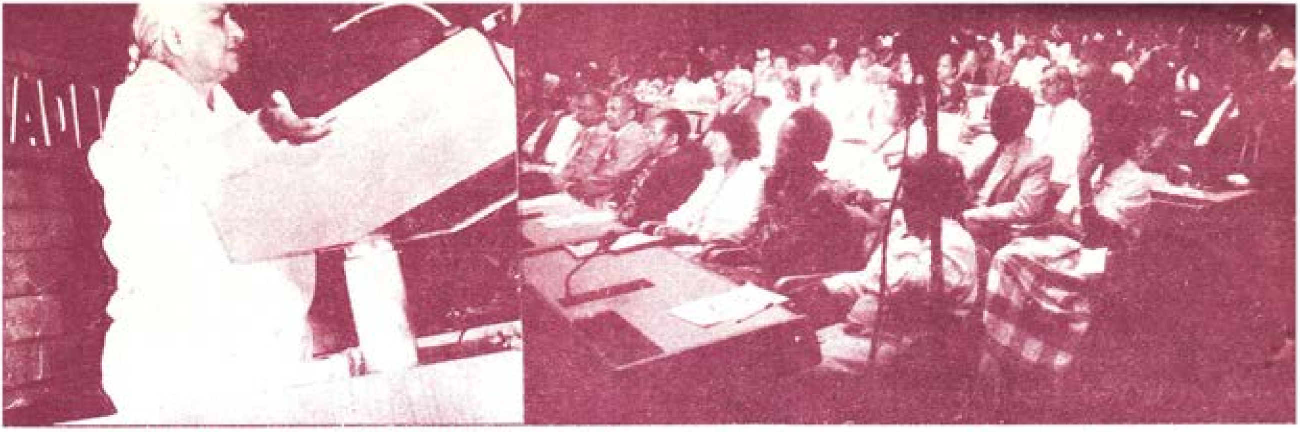

नैरोबी–'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' योजना के अन्तर्गत यू० ए० कान्फ्रेंस हाल में आयोजित एक समारोह में उपस्थित जन-समूह के समक्ष दादी प्रकाशमणी जी, मुख्य प्रशासिका, ई०वि०वि० प्रवचन करती हुई दिखाई दे रही है।

भुवनेश्वर–ब्र०कु० सन्देशी जी भ्राता बी०एन० पाण्डे, उड़ीसा के राज्यपाल जी को 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' योजना के बारे में अवगत कराती हुई।

गांधीनगर–में आयोजित 'स्वर्णिम युग आध्यात्मिक मेले' में राजयोग शिविर का उद्घाटन (दाएं से) आचार्य महामण्डलेश्वर स्वामी मंगलानंद जी, दादी प्रकाशमणी जी नारियल तोड़ते हुए कर रहे हैं। चित्र में महामहिम आर०के० त्रिवेदी जी, राज्यपाल, गुजरात भी दिखाई दे रहे हैं।

नैरोबी में ग्लोबल संग्रहालय में 'शान्ति स्तम्भ' का उद्घाटन करती हुई दादी प्रकाशमणी जी , मुख्य प्रशासिका, ई०वि०वि०। अन्य उपस्थित भाई-बहनें प्रसन्न मुद्रा में दिखाई दे रहे हैं।

बेंगलौर–आध्यात्मिक मेले के उद्घाटन अवसर पर ब्र०कु० देवीरम्मा स्वामी शान्तावीरा जी के 'सर्वात्माओं के पिता का चित्र भेंट करते हुए।

पूना—'फाइनेन्स तथा बैंकिंग' सेमिनार में मंच पर भ्राता रोहित जेराजनी, महाराष्ट्र जेसीज़ के उपाध्यक्ष, ब्र०कु० हृदयमोहिनी जी, ब्र०कु० जगदीश चन्द्र जी तथा अन्य।

भुवनेश्वर—भ्राता भूपेन्द्र सिंह, उड़ीसा के सूचना एवं सिंचाई मंत्री का ब्र०कु० सन्देशी 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' योजना के सम्बन्ध में संदेश देते हुए।

मन्दसौर—में आयोजित 'विश्व उत्थान आध्यात्मिक सम्मेलन' में ब्र०कु० किरण बहन प्रवचन करते हुए दिखाई दे रही हैं।

सोलापुर—किसान वर्ग के लिये आयोजित एक कार्यक्रम का उद्‌घाटन (दाएं से) भ्राता रत्नाकर गायकवाड, कलेक्टर, सोलापुर, भ्राता विनायकराव जी पाटील, एम०एल०ए०, भ्राता मजेंद गिल, उप जिलाधिकारी, पंढरपुर दीप प्रज्जवलित करते हुए कर रहे हैं।

बम्बई—'संस्कार धारणा शिविर' के उद्‌घाटन अवसर पर (बाए से) ब्र०कु० शिल्पा, प्रि० पी० एम० राऊत, कमिश्नर भ्राता श्री सदाशिव, तिनईकर, ब्र०कु० नलिनी तथा ब्र०कु० इन्दरा बहिन।

गोवा—में आयोजित 'आध्यात्मिक प्रदर्शनी' में महापसा अर्बन बैंक के उपाध्यक्ष भ्राता शिरोडकर तथा अन्य को चित्रों पर व्याख्या देती हुई ब्र० कु० शोभा बहन।

गांधीनगर—गुजरात राज्य के मुख्यमंत्री भ्राता अमर सिह चौधरी जी सेवाकेन्द्र पर पधारे। चित्र में वे ब्र० कु० दादी गुलजार जी, से ज्ञान वार्तालाप करते हुए दिखाई दे रहे हैं।

नैरोबी—बहन मारग्रेट केन्यट भ्राता किंगजले दुबे, निदेशक यू०एम०आई०सी०, भ्राता मनु चन्दारिया, सुप्रसिद्ध व्यापारी भ्राता शान्ति लाल पटेल, चेयरमैन, हिन्दू कॉन्सिल ऑफ केन्या तथा अन्य साथ ब्र०कु० दादी प्रकाशमणि जी, मुख्य प्रशासिका, ई०वि०वि०

मुम्बई—गामदेवी सेवाकेन्द्र द्वारा एक सेमीनार 'एडमिनिस्ट्रेशन आफ वैल्थ' का आयोजन किया गया। भ्राता एन० वागुल अध्यक्ष आई० सी०आई०सी०आई० उद्घाटन करते हुए।

अमृत-सूची

१.	लोभ से लाभ नहीं	१
२.	छोटी-छोटी बातें (सम्पादकीय)	२
३.	अब नहीं तो कभी नहीं	५
४.	दोस्तो, ऐसे दोस्त से सावधान रहो	८
५.	योग मार्ग में सगन, लग्न और मग्न	९
६.	जागो-जागो हे भारतवासी	११
७.	मंथरा अभी भी ज़िन्दा है	१२
८.	जगत माता-पिता की वृति एवं स्थिति	१४
९.	ज्ञानयोग, कर्मयोग, संन्यासयोग	१५
१०.	सचित्र आध्यत्मिक सेवा समाचार	१६
११.	शारीरिक स्वास्थ्य के लिये सामान्य लोगों की अज्ञानता	१८
१२.	तेरी चिन्ता प्रभु मिटाए	१९
१३.	निश्चय बुद्धि	२०
१४.	गीत	२०
१५.	कहां तेरी मन्ज़िल, कहां है ठिकाना मुसाफ़िर बता दे, कहां तुझको जाना ?	२१
१६.	दृढ़ संकल्प	२२
१७.	मन्मना भव ही क्यों ?	२३
१८.	दोष-दृष्टि से मुक्ति की युक्ति	२४
१९.	सफ़लता हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है	२५
२०.	प्रभु मिलन की शेष घड़ियां	२७
२१.	मनुष्य की बाह्य आकृति आत्मा की प्रतिकृति हैं	२९
२२.	योग द्वारा उपचार	३१
२३.	सचित्र समाचार	३२

कृपया ध्यान दें

प्रिय पाठकगण,

ज्ञानामृत का नया 24वां वर्ष जुलाई मास से आरम्भ हो रहा है। सेवाकेन्द्र की इंचार्ज बहिनों तथा अन्य से प्रार्थना है कि वे अपने सेवाकेन्द्र के ज्ञानामृत के सदस्यों की संख्या तथा शुल्क 25 जून तक आवश्य भेज देवें।

अभी तक भी पिछले वर्ष का ज्ञानामृत का बकाया कुछ सेवाकेन्द्रों की ओर रहा हुआ है। स्वयं को होवनहार देवता समझते हुए शीघ्र अतिशीघ्र चुक्तु करें, वरना हमें ज्ञानामृत भेजना बंद करना पड़ेगा।

ज्ञानामृत का वार्षिक शुल्क	20 रुपये
ज्ञानामृत का अर्द्ध वार्षिक शुल्क	10 रुपये
ज्ञानामृत का आजीवन सदस्यता शुल्क	250 रुपये
ज्ञानामृत का विदेशों के लिये शुल्क	140 रुपये

आप शुल्क नीचे लिखे गए पते पर ही भेजें तथा 'ज्ञानामृत' Gyan Amrit के नाम पर ही भेजें।

व्यवस्थापक
ज्ञानामृत
बी 9/19 कृष्णा नगर,
देहली-110 051

नोट : मनीआर्डर भेजते समय पीछे स्लिप पर अपना पता साफ़-साफ़ लिखें।

लोभ से लाभ नहीं है

ले० ब्रह्माकुमारी सन्देशी, भुवनेश्वर

लोभ एक ऐसा विकार है जोकि मनुष्य को मीठा लगता है क्योंकि इससे उसे प्राप्ति होती दिखाई देती है। परन्तु धीरे-धीरे मनुष्य इस में ऐसा फँसता है कि एक दिन यह मीठा मज़ा किरकरा हो जाता है और वह मकड़ी की तरह अपने बनाये जाले में फँस कर लटका-सा रह जाता है। लोभ का चस्का उसे दिनोंदिन अधिक लोभी बनाता है और आख़िर एक दिन अति से उसका अपना भी बुरा तरह अन्त होता है। लोभी सदा अतृप्त और असन्तुष्ट रहता है और, इस प्रकार, सन्तोष रूपी धन से वञ्चित रहने के कारण उसे सच्ची शान्ति और सच्चा सुख अनुभव नहीं होता बल्कि इस विकार द्वारा कमाई हुई सम्पत्ति एक-न-एक दिन उसे उलझन में डालती है और वह अपने काली जीवन-कहानी पर विचार करके पश्चाताप करता है।

लोभी इस रहस्य को नहीं मानता कि प्राप्ति सदा पवित्रता से ही होती है वरना लोभ से केवल काक-विष्ठा के समान तमोगुणी प्रकृति ही का लाभ होता है। लोभी मनुष्य प्रकृति के पीछे जितना अधिक भागता है उतना ही प्रकृति उससे आगे-आगे भागती है। अतः अब परमपिता परमात्मा कहते हैं कि आप लोभ—लालच को छोड़ो तो मैं अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति आपको दूँगा।

शेष पृष्ठ ३२ पर

छोटी-छोटी बातें

हमारे व्यवहार या कर्म-व्यापार में कुछ बातें ऐसी होती हैं, जिन्हें हम ''छोटी-छोटी'' बातें कह कर चला देते हैं। हम उन्हें सुधारने पर ध्यान ही नहीं देते क्योंकि उनके महत्त्व का हमें एहसास (Realisation) ही नहीं होता। किसी भी आदत के कारणों या परिणामों की गम्भीरता जाने बिना तो हम उसे ठीक करने का दृढ़ संकल्प करते ही नहीं और दृढ़ संकल्प न करने से वह आदत ठीक नहीं हो पाती। परन्तु हमें सोचना चाहिये कि जिन्हें हम **''छोटी-सी आदत''** कहते हैं, वह वास्तव में छोटी नहीं होतीं; वह केवल ऊपर-ऊपर से या बाहर ही से छोटी दिखाई देती हैं। उसके नीचे या भीतर तो कई अन्य त्याज्य आदतें छिपी होती हैं। जैसे हमें बताया जाता है कि ग्लेशियर (बर्फ की चट्टान Glacier) जल से ऊपर तो **थोड़ा-सा ही** दिखाई देता है परन्तु नदी या ''हिम नदी'' में उसका पहाड़-जितना भाग तो अपने ही भार के कारण छिपा रहता है, वैसे ही 'छोटी-सी आदतें'' भी बाहर से छोटी दिखाई देती हैं, उनके भीतर या नीचे तो पहाड़-जितना उनका विशाल रूप छिपा होता है। केन्सर रोग के बारे में भी यही बताया जाता है कि ऊपर तो **छोटा-सा** दाना ही दिखायी देता है परन्तु उसके नीचे, शरीर के अन्दर, उसकी जड़ें दूर-दूर तक फैली हुई होती हैं। मनुष्य **छोटा-सा** दाना देखकर सचेत नहीं होता और परिणाम यह होता है कि एक दिन वह सारे मनुष्य को ही दबोच लेता है। वह ''दाना'' ''दाना'' नहीं रहता बल्कि **सारे** शरीर को ही अपनी लपेट में लेकर उसे विषैला, निकम्मा और पीड़ाजनक बना देता है।

उदाहरण के तौर पर **देर करने ही की आदत** को ले लीजिये। यदि किसी व्यक्ति को पाँच सौ व्यक्तियों के सामने भाषण करना हो अथवा सौ-दो सौ-व्यक्तियों के क्लास में शिक्षा देनी हो और वहाँ देर से पहुँचे तो उसके इस अलबेलेपन के परिणाम स्वरूप सैंकड़ों लोगों का समय व्यर्थ जायगा। वे उसी की इन्तज़ार में बैठे रहेंगे। हो सकता है उनका मन भी उद्विग्न हो उठेगा कि वक्ता क्यों नहीं आया है, और कि यह तो ठीक आदत नहीं है। अतः उनका समय व्यर्थ करने के अतिरिक्त उनकी स्थिति को भी बिगाड़ने का निमित्त बनना एक बड़ी भूल है। यदि ऐसी भूल करने वाला क्षमा नहीं मांगता तो और अधिक भूल करता है और यदि क्षमा मांगता है तब एक तो वह लोगों के ध्यान को और अधिक अपने दुर्गुण या अपनी परेशानी की ओर आकर्षित कर के उनका और समय नष्ट करता है और यदि क्षमा मांगते हुए भी उसके मन में प्रायश्चित्त नहीं है अथवा भूल का गहरा एहसास नहीं है तो और अधिक भूल करता है और यदि सचमुच में प्रायश्चित्त भाव है तो अपनी स्थिति को भी असन्तुष्टता की स्थिति पर उसे लाना पड़ता है। फिर, इसके बाद भी यदि वह देर से पहुँचने की आदत बनाये रखता है, फिर तो आप सोच ही सकते हैं कि लोग भी उसके विषय में क्या सोचेंगे और वह भी अपने बारे में क्या सोचेगा!

जब रेल गाड़ी देर से पहुँचती है तो कितने लोगों को हानि होती है। जिन्हें सम्बन्धित गाड़ी लेनी होती है, उनकी वह गाड़ी छूट जाती है और दूसरी गाड़ी में उनका स्लीपर बर्थ (Berth) आरक्षित (Reserved) नहीं होता और सारा दिन स्टेशन पर बैठना या किसी होटल में धक्का खाना पड़ता है। खर्च भी होता, समय भी व्यर्थ होता है, आगे जहाँ पहुँचना हो वहाँ नहीं पहुँच पाते और कार्य में विघ्न उपस्थित होता है। हरेक यात्री की अपनी समस्या होती है और गाड़ी के देर से पहुँचने के कारण उन्हें न जाने क्या-क्या परेशानी होती है और उनके मन पर क्या बीतती है।

यदि अस्पताल में डाक्टर किसी ऐसे रोगी की ओर ध्यान देने में देर करे जिसका खून बह रहा हो या जिसे हृदय पीड़ा हो रही हो या जो चोट के दर्द से अत्यन्त दर्द की स्थिति में हो तो क्या परिणाम होगा। रोगी या घायल व्यक्ति के जीवन का प्रश्न होता है, आक्सीजन का सलैण्डर दो मिनट देर से आने पर रोगी की मृत्यु हो सकती है। सोचिये कि देर कितनी खतरनाक है।

किसी ऐसे व्यक्ति से पूछकर देखिये जिसके मकान को कभी आग लगी थी और बार-बार फोन करने पर अग्नि शामक दस्ता (Fire Brigade) केवल पाँच ही मिनट देर से पहुँचा था परन्तु इतने में ही अग्नि काबू से बाहर हो गयी थी और लाखों रुपये का मकान, उसमें पड़ी नकदी, कीमती फर्नीचर, जरुरी कागज और अन्य सैंकड़ों उपयोगी वस्तुएँ जिन्हें जीवन-भर की कमाई से ही नहीं बल्कि बजुर्गों से प्राप्त जायदाद आदि तथा सहायता से जुटाया था, सब भस्मसात हो गये! उस व्यक्ति के मन में पाँच मिनिट का कितना मूल्य होगा।

संसार में कितनी ही लड़ाइयाँ इसलिये हारी गयीं कि फौज पहुँचने में कुछ देर हो गयी और शत्रु की फौज कुछ मिनिट पहले पहुँच गयी। अतः हमें समझना चाहिये कि कुछ मिनिट की देर कोई छोटी-सी बात नहीं है। मनुष्य का जीवन ही छोटा-सा है, यदि उसमें से कुछ-कुछ मिनिट कुतर-कुतर कर निकलते जायें तो बाकी रह ही कितना समय जायेगा?

यदि एक-आध बार नियन्त्रण से बाहर किसी कारण से देर हो जाय तो बात कुछ और है परन्तु देखा यह गया है कि कुछ लोगों की आदत ही हर कार्य को देर से करने की होती है। वह समय पर पहुँचते या तैयार होते ही नहीं बल्कि कोई-न-कोई कारण बता देते हैं। वे कहते हैं कि बस 'लेट' (Late) हो गयी थी या बस छूट गयी थी। वह यह नहीं समझते कि जिसे वे यह बात बता रहे हैं, वह भले ही चुप रह जायेगा परन्तु इससे वह सन्तुष्ट तो नहीं होगा। यदि किसी को बस में जाना है तो यह उसे ही सोचना चाहिये कि बस उसकी इन्तजार में तो नहीं खड़ी होगी, अतः उसे यह अन्दाज़ा लगाकर चलना चाहिये कि यदि एक बस छूट गयी तो भी मुझे समय पर पहुँचना है और यदि देर से गयी तो भी मुझे समय पर पहुँचना ही है। अगर बस खराब भी हो जाय तो भी उसे तो बस से उतर का स्कूटर भी कर लेना चाहिये या जूते हाथ में लेकर भी भागना चाहिये क्योंकि समय पर पहुँचना उसकी ज़िम्मेदारी है।

विशेष तौर पर जो शिक्षक या शिक्षिकाएँ हैं, उन पर तो यह बात बहुत लागू होती है। यदि वे ही अपनी कक्षा में देर से पहुँचेंगे तो बच्चे उनसे क्या सीखेंगे? न केवल उनके प्रारम्भिक जीवन का वह अनमोल अध्ययन-काल व्यर्थ जायेगा बल्कि उनके चरित्र में भी यह दोष आ जायेगा।

परन्तु केवल शिक्षक ही क्यों, हर व्यक्ति यदि अपना कार्य ठीक समय पर नहीं करेगा तो उसके परिणामस्वरूप अनेकानेक को हानि होगी और उसका भारी पाप उसके सिर पर लदेगा। ऐसा कार्य या ऐसी सेवा करने से क्या प्रयोजन कि जिससे अनेकों का अमूल्य समय व्यर्थ जाय और अपने सिर पर भी पाप के ढेर लद जायें?.

फिर, हर कार्य को देर से करने की जो आदत पड़ जाती है, वह तो महादोष है। उससे तो बहुत ही हानि होती है। जो "ढिल्लम प्रसाद" बनकर कार्य करता है, वह जीवन में कितना कार्य कर पायेगा वह तो मटक-मटक कर और अटक-अटक कर ही चलता रहेगा और किसी दूरस्थ मंज़िल पर तो जीवन-भर भी नहीं पहुँच सकेगा। यदि चाँद पर जाने के लिये राकेट न बनाये जाते तो अपनी चहलकदमी से, पद यात्रा से, बैलगाड़ी से या गधे और खच्चर की सवारी से क्या मनुष्य कभी चाँद पर पहुँच पाता?

इस प्रकार जिस का स्वभाव ही देर से कार्य करना हो जाता है, वह तो अपने आध्यात्मिक पुरुषार्थ में भी अपनी मंज़िल पर ठीक समय पर नहीं पहुँच पाता अथवा अपने उच्च लक्ष्य को प्राप्त ही नहीं कर पाता। अतः विशेषकर आध्यात्मिक पुरुषार्थ में तो देर से कार्य करने की आदत की इतनी बड़ी हानि है जिसका हिसाब ही नहीं क्योंकि वह तो अपनी इस आदत के कारण हर संस्कार को बदलने में देर करेगा और इस प्रकार अपने पूरे संस्कार बदल ही नहीं पायेगा या संस्कारों को बदलने का कार्य पूरा ही नहीं कर पायेगा।

हमारे कहने का यह भाव नहीं है कि जब हृदय अधिक तेज़ी से धक-धक करने लगे या उसकी गति ही रुक जाय, आप देर मत करो। कई परिसिथतियाँ ऐसी होती हैं या हरेक की अपनी कुछ मजबूरियाँ भी ऐसी होती हैं, जिनमें से कुछ कभी-कभी सभी को बतायी भी नहीं जा सकतीं परन्तु उनके कारण देर हो जाती है। कई बार मनुष्य के सम्मुख ऐसे आवश्यक कार्य उपस्थित हो जाते है जो पहले निश्चित किये हुए कार्य या कार्यक्रम से अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। उनके कारण से पहले निश्चित किये गये कार्य को स्थगित भी करना पड़ता है या उसकी ओर देर से भी ध्यान देना पड़ता है। कुछेक स्थितियाँ मनुष्य के अपने काबू से बाहर भी होती हैं क्योंकि उनका सम्बन्ध दूसरे भी कई लोगों से होता है और यदि वे उस कार्य को ठीक समय पर न करें तो आगे हमें भी उसे निपटाने में देर हो जाती है। यदि न चाहते हुए और हर कोशिश करने पर और मजबूरी के कारण देर होती है तो बात अलग है, वर्ना यदि स्वभाव-वश अथवा इन्तज़ार करने वालों के समय को कम महत्त्व देने के कारण अथवा स्वयं को एक बहुत बड़ा व्यक्ति मानकर दूसरों के समय को महत्त्व न देने के कारण देर होती है तो वह महान् भूल है; वह भी एक पाप है क्योंकि उसका मूल अभिमान या दूसरों के समय को निर्मूल्य मानने की भ्रान्ति है।

हमारे कथन का अभिप्राय यह है कि हमें किन्हीं आदतों को छोटे मान कर उनके प्रति प्रमाद नहीं करना चाहिये। हर छोटी आदत अन्य कई दुर्गुणों को साथ लिये होती है। कोई भी बुरी आदत अकेली नहीं रहती। इस संसार में अकेला कोई भी नहीं रहता। बुरी आदत के भी अपने साथी होते हैं। देर की आदत ही पर अगर हम विचार करें तो उसके साथ अलबेलापन, आलस्य, दूसरों के समय को कम मूल्य देना, अपने को बड़ा मानने का सूक्ष्म अभिमान, वैसे ही समय के महत्त्व को न जानना, आदि-आदि सभी या इनमें से कई उसके साथ जुटे रहते हैं। ये सभी मिलकर मनुष्य के विवेक को पकड़े रहते कि यदि उस व्यक्ति को समझाया भी जाये कि देर नहीं करनी चाहिये तो वह उल्टे हमें समझाते हुए कहेगा "तुम चिन्ता मत करो। हमें अपने कर्त्तव्य का पता है। तुम शान्त रहो, धीरज धरो। चुप करके बैठो। हम जानते हैं कि हमें क्या करना है। हमने लोगों को पाँच बजे आने के लिए कहा हुआ है और हम ५-३० बजे पहुँचेंगे क्योंकि हमें पता है कि लोग ५-३० बजे तक पहुँचेंगे। जब तक सभी लोग आ ना जायें हम जाकर क्या करेंगे? हम पाँच-सात व्यक्तियों पर भाषण जमा दें और फिर समाप्त कर दें तो बाकी जो लोग बाद में आयेंगे, उनको हम क्या सुनायेंगे?"

इस प्रकार उल्टे हमें ही शिक्षा मिलना शुरु हो जाएगी जब हम किसी को जल्दी तैयार होने के लिये कहेंगे। तब मालूम होगा कि यह लोग देर नहीं कर रहे बल्कि ये तो बहुत बुद्धिमान हैं; यह तो पूरी योजना बनाकर कार्य कर रहे हैं और यह लोगों के व्यवहार-मनोविज्ञान को भी जानते हैं और हम यों ही देर होते देखकर व्यर्थ सोच में पड़े हुए हैं।

अत: हमें ही चुप होना पड़ेगा क्योंकि उनका यह तर्क तो ठीक होता है कि लोग ही नहीं इकट्ठे हुए तो वे भाषण किस पर जमाएं? तो लीजिए जब सारा समाज ही देर करने पर तुला हुआ है, तब हम क्यों मरे जायें? परन्तु नहीं, यह देख कर भी हमें देर की आदत नहीं डालनी चाहिए वर्ना, सच मानिये हमें अपने जीवन में बहुत कम ही कर सकेंगे। हानि किसी दूसरे को तो होगी परन्तु हमें भी होगी।

देर न करने का यह अर्थ नहीं कि हम जल्दी करें। देर न करने का यह भाव भी नहीं कि हम बेतहाशा भागें और दुर्घटना कर दें। देर न करने का यह अर्थ भी नहीं कि हम ठीक तरह सोचने के लिए भी आवश्यक समय न लें और सोचे-समझे बिना, उतावलेपन में ही कर्म कर डालें। देर न करने का यह भी अर्थ नहीं कि हम धीरज छोड़ दें या भगदड़ मचाये रखें और हो-हल्ला का माहौल बनाये रखें। भाव केवल इतना ही है कि अलबेलापन न करें, आलस्य न करें, दूसरे के समय के मूल्य को कम न आंकें, हम अपने अभिमान के नशे में दूसरों का समय गँवाने की हिमाकत न करें।

यह ठीक है कि यदि अध्यापक कक्षा में देर से पहुँचता है तो उससे यह प्रश्न पूछना कि वह देर से क्यों आता है, विद्यार्थियों का काम नहीं। उन्हें अध्यापक के प्रति सम्मान से व्यवहार करना चाहिए वर्ना उनमें बड़ों का अपमान करने का संस्कार आ जायेगा और इस प्रकार पर-चिन्तन करते हुए वे स्वयं में बड़ों के प्रति अपमान-वृति अपनाने के कारण अपने पतन के स्वयं ही निमित्त बन जायेंगे। अध्यापक की जवाब-तलबी करना प्रधानाध्यापक का कार्य है। यदि वह भी नहीं करता है तो एक दिन विद्यार्थी के अभिभावकों द्वारा बात ऊपर तक पहुँचायेंगे। परन्तु विद्यार्थियों को इसकी चिन्ता न करके अपना ध्यान पढ़ाई की ओर देना चाहिए। हो सकता है कि अध्यापक के घर में कोई व्यक्ति किसी भयावह रोग से पीड़ित हो और उसके कारण उसने प्रधानाध्यापक को बताकर देर से आने की स्वीकृति ले रखी हो। यह भी हो सकता है कि अध्यापक दूरस्थ नगर से रेल से आता हो और रेल ही लेट आती हो।

परन्तु मुख्य बात तो यह है कि पापी अपने बोझ से स्वयं तकलीफ पाता है। अत: जो स्वभाव से, उत्तरदायित्व के एहसास के अभाव के कारण या जानबूझ कर देर से पहुँचता है या हर कार्य देर से करता है, वह स्वयं ही अपना समय गँवाता है और अपना अपयश फैलाता है।

समय का पालन न करने और देर करने का तो हमने एक उदाहरण ही दिया था। कहने का भाव तो यह था कि हम छोटी-छोटी बुरी आदतों को छोटा समझ कर ही न चला दिया करें क्योंकि इससे हानि बहुत होती है। हमारे देर करने से कोई अपने इन्टरव्यु पर ही समय पर न पहुँच सके और आयु-भर के लिये किसी अच्छे पद से वंचित हो जाय या वह वायुयान में उड़ान से चूक जाए तो हमारी भूल दूसरे को कितनी हानि पहुँचाने वाली होगी। जहाँ हम समय पालन का ध्यान दें और देर करने की आदत को छोटा न समझें वहाँ हम दूसरी बुरी आदतों को भी "छोटी-छोटी" कह कर न छोड़ दें।

—जगदीश

मुलुंड कालोनी (बम्बई) में आयोजित 'सुखमय संसार आध्यत्मिक मेले के उद्घाटन समारोह के समय ब्र०कु० दादी हृदयमोहिनी जी अपना प्रवचन करते हुए।

"अब नहीं तो कभी नहीं"

—ब्र०कु० सूर्य, माउण्ट-आबू—

जिसने हमारे सभी पापों को भुलाकर व क्षमा-दान देकर हमें स्वीकार किया, जिसने रात को भी दिन समान, रूहों की अथक भाव से मनोकामनाएँ पूर्ण कीं, जिसने अपने सच्चे प्यार का प्रत्यक्ष प्रमाण देकर हमारा अलौकिक श्रृंगार किया, उस पारलौकिक परमपिता परमात्मा शिव और अलौकिक माँ ब्रह्मा के निःस्वार्थ प्यार का फल हम क्या देंगे? क्या आशा है उसके दिल में? हमारी ममता की मूर्त्ति माँ (ब्रह्माबाबा) और प्यार के सागर बाप (शिवबाबा) हमें सर्वश्रेष्ठ 'बाप-समान' स्थिति में देखना चाहते हैं। यदि हमारा भी उनसे सच्चे दिल का स्नेह है, तो हम उनके संकल्पों को पूर्ण करने की दिल में ठान लें। जब भी हमें हमारी अलौकिक माँ की याद आवे तो हम उसकी इस महान् अभिलाषा को स्मरण करें और उनके समान बनकर ही अपने दिल के सच्चे स्नेह का सबूत दें।

उन्होंने अपने महावाक्यों में हमें चुनौती भरे शब्दों में प्रेरणा दी है कि यह १९८८ का वर्ष बाप-समान बनने का अन्तिम वर्ष है। क्या इन महावाक्यों की सत्यता में हमारा सम्पूर्ण विश्वास है? क्या सचमुच हमने अपनी रफ्तार बदली है या वही पुरानी चाल है हमारी? इस सन् १९८८ में दो बार ८ की संख्या का आना, इसके महत्त्व को अत्यन्त बढ़ा देता है। ८ की सँख्या के महत्त्व को हम जानते हैं। ८ रत्न—सम्पूर्ण विश्व की सबसे महान् आत्माएँ। ८ शक्तियाँ—अष्ट रत्न बनने का मुख्य आधार। ८ घण्टे योग—सर्व श्रेष्ठ ईश्वरीय आज्ञा। सतयुग की ८ प्रसिद्ध गद्दियाँ। इस शरीर में भी ८ ही ग्रन्थियाँ हैं। इस प्रकृति में, आन्तरिक निर्माण में एटम (Atom) के अन्तिम कक्ष पर ८ इलेक्ट्रोन्स (Electrons) का हो जाना अत्यन्त उपयोगी है। तो इस वर्ष के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए ऐसा लगता है कि यह वर्ष अन्तिम रूप से ८ रत्नों का चुनाव कर लेगा और शायद इसके बाद यह रेस समाप्त हो जाएगी। तो इतनी बड़ी चुनौती महारथियों के समक्ष है। अब देखें, कौन इस समय के महत्त्व को जानकर व समय को पूर्ण महत्त्व देकर इसका पूरा लाभ उठाते हैं?

निःसन्देह, यह अनमोल समय पुनः लौट कर नहीं आयेगा। इस समय का अलबेलापन जन्म-जन्म के लिए पश्चाताप का कारण होगा। इस समय की सुस्ती जन्म-जन्म की तकदीर की रेखा को टेढ़ा कर देगी। इस समय की गहन निद्रा, अज्ञान की घोर निद्रा ही मानी जाएगी। अतः विवेकशील आत्माओं का कर्त्तव्य है कि वे पूर्ण उमंग-उत्साह के साथ इस ईश्वरीय प्रेरणा को पूर्ण करने में तत्पर हों। जो ऐसा नहीं करेंगे, वे मानो द्वार पर आये भाग्य को अस्वीकार करने जैसा कर्त्तव्य करेंगे।

कुर्बानी—मैं-पन की और कमजोरियों की

इतिहास में वीरों ने समय-समय पर गायन योग्य कुर्बानियाँ की हैं। अब इतिहास के अन्तिम दौर में भगवान् ने पुनः ललकारा है। इस आह्वान पर जो आत्माएँ बाप समान बनने के लिए कुर्बानी करेंगी, वे ईश्वरीय सहयोग से अपने श्रेष्ठ लक्ष्य को पा लेंगी। तो हम सबको ईश्वरीय प्यार में कुर्बानी करने को तैयार रहना चाहिए। कुर्बानी हमें क्या करनी है? बाप समान बनने में सबसे बड़ी कुर्बानी है—मैं-पन के अभिमान की। यह मैं-पन या बुद्धि का अभिमान साधक को बार-बार स्वस्थिति वा श्रेष्ठस्थिति से नीचे खींचता है। इसके अतिरिक्त हमें देखना होगा कि इस सर्वोच्च स्थिति को पाने के लिए कौनसी कमजोरी हमारे मार्ग में बाधक है? उसकी भी हमें कुर्बानी करनी होगी। मुख्य रूप से अपने चारों ओर फैलाए हुए विस्तार को समेटना आवश्यक होगा ताकि हमारा ये अनमोल समय व्यस्तता में ही न बीत जाए। इसके अतिरिक्त ईर्ष्या, द्वेष, मान-अपमान, घृणा आदि किचड़े (Waste) की भी हमें कुर्बानी करनी होगी। इस प्रकार जो एक झटके से कुर्बानी करते हुए उमंग-उत्साह से इस दौड़ में आगे बढेंगे, वे अवश्य ही समय से पूर्व मंजिल को पा लेंगे।

'बाप-समान' बनने का अर्थ

बाप समान बनना अर्थात् भगवान् जैसा सम्पूर्ण बनना। यह महान् लक्ष्य स्वयं भगवान् ने हमें दिया है और इस लक्ष्य की सिद्धि का सरलतम मार्ग है—'ब्रह्मा बाबा को फॉलो करना'।

ब्रह्मा बाबा क्या थे—इस बारे में बहुत कुछ हम जानते हैं। उनकी कुछ महानताओं का वर्णन यहाँ हम कर रहे हैं ताकि उन्हें अपनाकर बाप-समान बनना सहज हो।

वे महान् राजऋषि थे

उनकी तपस्या प्रसिद्ध है। वे एकाग्रता के धनी थे। मन, बुद्धि पर सम्पूर्ण नियन्त्रण रखने वाले वे अत्यन्त शक्तिशाली तपस्वी थे। सच कहें तो चलते-फिरते व कार्य करते भी वे निरन्तर खुली आँखों से समाधिस्थ रहते थे। लगातार ३३

वर्ष महान् तपस्या में कभी उन्होंने ढील नहीं आने दी। अन्तिम ३ वर्ष की तपस्या तो उनकी इतनी उच्चकोटि की थी कि—जो भी उनके सामने आता, वह अशरीरी हो जाता जिसको भी वे छू देते, वह देहभान को भूल जाता और जिस पर भी उनकी दृष्टि पड़ जाती, वह पुराने संसार को ही भूल जाता। उनके चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश नज़र आता था। उनका ललाट तेज से चमकता था। उन्होंने रात-दिन तपस्या की। इस तपस्या में उनकी निद्रा भी योग-निद्रा बन चुकी थी। वे कभी भी गाढ़ निद्रा में सोये नहीं देखे गये, मानो कि वे निरन्तर ही जागती ज्योति बन गए थे। तब ही तो वे प्रजापिता ब्रह्मा कहलाये और पिछले २० वर्षों से सूक्ष्मवतन में निरन्तर भगवान-तुल्य परम-आनन्द की स्थिति का रसपान कर रहे हैं, फरिश्ता बन विश्व सेवा कर रहे हैं। उन जैसा बनने के लिए हमें भी अब उनकी तरह वैसी ही गहन तपस्या करनी होगी।

उनकी इसी तपस्या का प्रभाव था कि जब भी कोई स्त्री या पुरुष उनसे मिलने आता, वह यह भूल जाता कि वे किसी पुरुष से मिल रहे हैं अथवा वह स्वयं भी पुरुष या स्त्री है। यह साकार बाबा की आत्मिक स्थिति व दृष्टि का प्रभाव था। वास्तव में देह में रहते हुए भी मानो वे देह-भान में नहीं रहते थे।

उनका जीवन वैराग्य से परिपूर्ण था

स्वयं मालिक होते हुए भी, सर्व प्राप्तियाँ होते हुए भी उन्होंने कभी भी वैराग्य की भावना को कम नहीं होने दिया। व्यक्तियों व वैभवों का आकर्षण उन्हें छू नहीं सका। सेवा के साधनों का उपयोग करते व कराते हुए, वे कभी भी इनके बन्धन में नहीं आये। उनका वैराग्य आनन्द लिए हुए था। न तो वे स्वयं सूखे संन्यासी थे और न उनका वैराग्य ही सूखा था। वास्तव में यही वैराग्य की श्रेष्ठ स्थिति है।

परन्तु वैराग्य के साथ सेवा का उमंग व पढ़ाई का लगन भी उनमें अद्वितीय था। कई बार ऐसा देखने में आता है कि कई वैरागी अच्छी बातों से भी वैराग्य कर बैठते हैं जो उनके जीवन के रस को छीन लेता है। परन्तु ब्रह्माबाबा का वैराग्य आनन्द से परिपूर्ण था। जब भी कोई उनसे मिलने आता, उसे उनमें प्यार का सागर छलकता अनुभव होता। ऐसा नहीं था कि वैराग्य के कारण वे मनुष्यों से नहीं मिलते थे या वे जीवन में रस का अनुभव नहीं करते थे।

तो हम भी यदि उन जैसा बनना चाहते हैं, तो इस विनाशी दुनिया, विनाशी पदार्थ, देह के आकर्षण, पदार्थों के आकर्षण, इच्छाओं की गुलामी, सांसारिक झुकाव आदि से वैराग्य धारण करें।

बाबा सागर की तरह गम्भीर थे

गम्भीरता महानता की प्रतीक है। ब्रह्मा बाबा राजा की तरह गम्भीर थे। हम जानते हैं कि तृप्त व भरपूर व्यक्ति ही गम्भीर रह सकता है। जो समाता है, वही बाप समान बनता है। जैसे परमपिता शिव हम आत्माओं के पापों को समा लेते हैं, जिसकी कल्पना—'शिव ने जहर पिया'—कह कर की गई है। वैसे ही प्रजापिता ब्रह्मा भी सभी बच्चों के पापों को व भूलों को सहज भाव से समा लेते थे और उनकी महानता तो यह थी कि वे फिर उन आत्माओं को सच्चा प्यार देते थे। शुभ-भावनाओं का दान देते थे, न कि घृणा भाव रखते थे। इस समाने के महान् गुण के कारण ही वे पाप-हर्त्ता रूप में प्रसिद्ध हो गये।

तो बाप समान बनने के लिए हम भी गम्भीर बनकर सब कुछ समाना सीखें। हर बात की यहाँ-वहाँ उल्टी (चर्चा) न करें। जैसे आजकल विज्ञान व्यर्थ वस्तुओं को कार्य उपयोगी बना देता है, वैसे ही हम भी दूसरों की हर बात को अच्छा रूप देकर ही ग्रहण करें। इससे हम महान् बनेंगे, सागर समान ज्ञान के हीरे-मोतियों से भरपूर बनेंगे।

उनके संस्कार भगवान्-तुल्य थे

जैसे भगवान् सुख-दाता, दुःख-हर्ता रूप में प्रख्यात हैं, वही संस्कार ब्रह्मा बाबा के थे। वे पूर्णतया सुख-स्वरूप थे, किसी के भी दुःखी दिल को क्षण-भर में सुख की शीतल लहरों में लहरा देते थे। उनके कल्याणकारी बोल रोतों को हँसाने वाले थे। दुःखी होने पर लोग भगवान् की शरण में जाते हैं। जो भी उनके पास आता, उन्हें अपना सच्चा सहारा अनुभव करता था। वे डूबतों के सहारे थे।

उनका एक प्रसिद्ध गुण था—सब में उमंग-उत्साह भरना। जो व्यक्ति स्वयं को अयोग्य, बेकार, निरुत्साहित समझता था, उसमें वे उमंगों के बाण फूँक देते थे। उनके पास लोग निराशा के पहाड़ उठाये आते और आशाओं के दीप जलाकर लौटते थे। इसी के साथ-साथ माँ के रूप में पालना देने के संस्कार भी उनमें खूब थे। दुनियावी दृष्टि में चाहे कोई गरीब हो या अमीर, सबके वे पिता थे, पालनहार थे। उनकी अलौकिक पालना की रीति लोगों के दिल जीत लेती थी। उन जैसा बनने के लिए यही रॉयल संस्कार हमें भी धारण करने होंगे। उनमें किसी से कुछ लेने की अंश-मात्र भी कामना नहीं थी, भगवान् के समान सदा दाता का रूप ही उनका प्रत्यक्ष रहा।

वे निर्भय, उदार व विशाल-दिल थे

भविष्य में राजाओं के राजा श्री-नारायण बनने वाले पिता-श्री यहां भी राजा थे। 'परमपिता पर सम्पूर्ण विश्वास'—उनकी निर्भयता का मुख्य आधार था। इस विश्वास के कारण ही कभी भी उनके चेहरे पर चिन्ता की रेखा नहीं देखी गई। वे तो जग की चिन्ता हरने वाले थे।

इसलिए सबको वे सिखाते थे—"बच्चे शिवबाबा बैठा है, चिन्ता मत करो।" भला सबकी चिन्ताएँ हरने वाला जिसके तन में प्रविष्ट हो, वह चिन्ता क्यों करे? वही तो हमारे भी साथ है, हम भी उसके बल पर बेगमपुर के बादशाह बन जाएँ।

इसी तरह वे राजाओं की तरह उदारचित्त व विशाल-दिल थे। पहाड़ को राई बना देना उनका स्वभाव था। सदा ही नथिंग न्यू (Nothing new) कहकर हर बात को हल्का कर देना—उनकी विशालता थी। पास्ट इज़ पास्ट (Past is past) कहकर बीती के बोझ को हर लेना—उनकी विवेक-शीलता थी। हम उन्हीं की तरह विशाल-दिल बनें, छोटे दिल वाले नहीं। छोटे दिल वाले बाप समान नहीं बन सकते, न ही छोटे दिल में विशाल दिल बाप ही समा सकता।

बाबा का स्वमान उन्हें मग्न रखता था

सदा ही ईश्वरीय नशे में मग्न रहने वाले महान् तपस्वी बाबा, जब भविष्य के नशे में मग्न होते तो उनका वर्तमान स्वरूप लुप्त होकर भविष्य स्वरूप में एकीकार हो जाता था। इस नशे में उन्हें सभी बातें छोटी लगती थीं। वे कहीं उलझते नहीं थे। वे सदा ही स्वमान की ऊँची सीट पर विराजमान रहते थे।

बाप-समान बनने के लिए, ऐसी ही महान् स्वमान की स्थिति बनाने के लिए हम अपने वर्तमान साधारण स्वरूप को विस्मृत कर अपने सत्य स्वरूप में व भविष्य स्वरूप के नशे में रहें। स्वमान ही हमें सहज योगी बनाता है। स्वमान ही हमें दूषित वातावरण के प्रभाव से मुक्त रखता है। बाबा के नशे की चाल शेर समान दृष्टि-गोचर होती थी। हम उनके बच्चे भी इस कलियुगी जंगल में शेर समान निर्भय हो कर विचरण करें।

बाबा निरहंकारिता की चेतन मूर्त्ति थे

बुद्धि के व मैं-पन के अभिमान को जीतने में वे सर्व-प्रथम रहे। इस कारण वे तन-मन से सदा निर्मल, शीतल व सुखदायी बन गये। सबसे महान् व सबसे शक्तिशाली आत्मा (साकार बाबा) सबसे अधिक निर्माण बनी। न उनके बोल में अहं था, न विचारों में, न कर्त्तव्य में अहं था, न व्यवहार में। निर्मलता उनके जीवन से स्पष्ट झलकती थी और इसका आधार था—उनकी यह अनुभूति कि "करन-करावनहार परमात्मा ही सब कुछ करा रहा है, हम तो निमित्त हैं।" 'करन-करावनहार की स्मृति' व 'स्वयं करने का सम्पूर्ण उमंग'—दोनों में समानता रखना सरल काम नहीं है। करने के उमंग के साथ कर्त्तापन का अहं आ सकता है और करन-करावनहार की भावना के साथ करने का उमंग समाप्त हो सकता है। परन्तु उनके जीवन में दोनों की समानता थी। उन्हीं की तरह हम भी अहंकार के विष को बाहर फेंक दें और निर्मल व शीतल बनकर समत्व को प्राप्त हों।

उनके जीवन में पूर्ण सन्तुलन था

सन्तुलन योगियों के जीवन की शोभा है। वे केवल न्यारे ही नहीं थे, सबके प्यारे थे। वे केवल स्नेही ही नहीं थे, शक्तिस्वरूप भी थे। वे पुरुषार्थ में 'पहले मैं' और सेवा में 'पहले आप' के सन्तुलनधारी थे। ज्ञान, योग, सेवा आदि सभी विषयों का सन्तुलन उनके जीवन में दिखाई देता था।

इसी प्रकार हम भी उन जैसे महान् योगी, उन जैसे ही महान् ज्ञानी, उन जैसे ही धारणा सम्पन्न व सेवाधारी बनें। तब हम सहज ही बाप समान स्थिति को पा सकेंगे।

जैसे वे क्षमाशील थे, तन, मन, बुद्धि से समर्पित थे, सहज भाव से सहनशील थे, रहमदिल व निद्राजीत थे, वैसा ही जीवन बनाकर हम भी अपने जीवन से उनका स्वरूप दिखा सकते हैं।

तो हे सर्वशक्तिवान की शक्तिशाली आत्माओ! आओ, हम अपने 'मास्टर सर्वशक्तिवान' स्वरूप में स्थित हो जाएँ। जैसे परमपिता दूसरे के तन में अवतरित होते हैं, वैसे ही हम भी इस देह में अवतरित होकर दिव्य कर्म करें। जैसे वे शान्ति के सागर हैं, हम भी पीस-हाऊस (शान्ति-भण्डार) बनकर विश्वभर की आत्माओं को शान्ति का दान दें। जैसे प्रभु पालन-कर्ता हैं, हम भी मास्टर पालनहार बन जाएँ, तब ही हम बाप समान स्थिति पा सकेंगे और जैसे 'बाबा' कहने से सभी का दिल आनन्दित हो जाता है, वैसे ही हम योगियों की भी याद आने से सर्व के दिल आनन्दित हो जाएंगे। तो आओ, इस वर्ष बाप समान बनने के लिए हम पूरा ज़ोर लगा दें और हमें यह भी नशा रहे—

'हम नहीं बनेंगे तो और कौन बनेगा?'

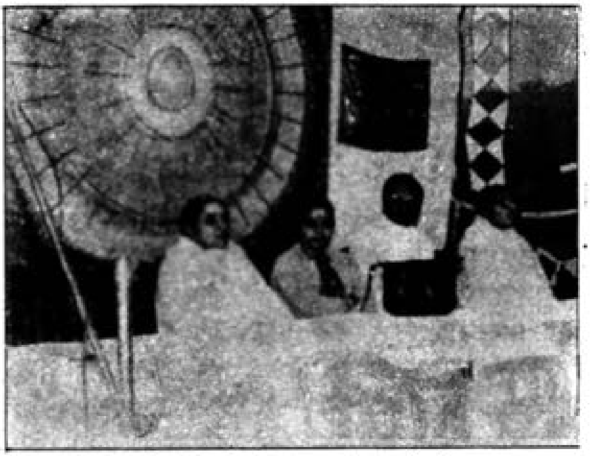

अम्बाला छावनी—'शिव स्मृति सप्ताह' समारोह के अवसर पर मंच पर (बाएं से) ब्र० कु० कृष्णा, सुषमा स्वराज, हरियाणा की खाद्य और आपूर्ति मंत्री, डॉ० एस०के० जैसवाल, अध्यक्ष आई०एम०ए० तथा ब्र० कु० आशा उपस्थित हैं।

दोस्तो, ऐसे दोस्त से सावधान रहो !

ब्र० कु० चन्द्रमोहन, बम्बई (गोरेगांव)

वैसे तो मेरी और उसकी दोस्ती मेरे ज्ञान में आने के पूर्व से ही थी। उसके निःस्वार्थ स्नेह एवं दोस्ती से मैं प्रभावित था। परन्तु मेरे ईश्वरीय विद्यालय का विद्यार्थी बनने के बाद, हम दोनों के मार्ग अलग-अलग हो गये । मैं उसे भूल गया और वह मुझे भूल गया । फिर पुरानी यादों को लेकर मेरे पास आया । बहुत प्यार से मिला और बार-बार मिलने का वायदा करके गया । उस दिन के बाद वह सप्ताह में एक-दो बार मुझे मिलने आने लगा । हमारा सम्पर्क फिर से गहरा होता गया । थोड़े दिन के बाद उसने हर रोज आना शुरु कर दिया । सम्बन्ध बढ़ते-बढ़ते फिर हम दिन में ३-४ बार एक-दूसरे से मुलाकात करने लगे । अगर वह एक दिन भी नहीं आता तो मैं बेचैन हो जाता । कभी-कभी तो वह मेरे क्लास में जाने के समय पर ही पहुँच जाता था । फिर हमारी लम्बी-लम्बी मुलाकातें शुरु होतीं और मुझे क्लास में जाने के लिए देरी हो जाती । फिर कुछ बहाने बनाकर मैं निमित्त बहन को चला लेता । धीरे-धीरे क्लास में देरी से जाने का मेरा नियम ही बन गया और हर रोज बहाने बता-बताकर बहाने बाजी के संस्कार भी कड़े बन गये ।

उसका बार-बार और कभी भी आ जाना मेरे परिवार के सदस्यों को भी पसन्द नहीं था। वे अपनी नाराजगी व्यक्त करने लगे। उस दोस्त से सम्बन्ध तोड़ने के लिये शिक्षा-सावधानी देने लगे। मैं भी मेरे गलत व्यवहार को महसूस करता ही था क्योंकि उस दोस्त के आ जाने के साथ अन्य अनेक अवगुण मेरे जीवन में प्रवेश होने लगे। इसलिए मेरा ही मन मुझे कोसता था। परन्तु दूसरी ओर उसकी निःस्वार्थ दोस्ती मुझे खींचती थी। वह जब आता था, तब दिल को तसल्ली मिलती थी। उसके साथ घण्टे-घण्टे कैसे बीत जाते, मालूम ही नहीं पड़ता था। उसके आने से मेरी दुनिया ही अलग हो जाती। ना कोई समस्या, ना कोई चिन्ता। इसलिए न चाहते हुए भी उसके साथ घण्टे-घण्टे बिताने का दिल होता। इसलिए हमारा सम्बन्ध इतना गहरा बना कि जब मैं अमृतवेले योगाभ्यास के लिए उठता, तब पहला फोन उसका ही आता। फिर बाबा से रूह-रिहान के बजाए उसी के साथ दिल की रूह - रूहान होती रहती और उसकी मीठी-मीठी बातें सुनते-सुनते जब तक मैं सो नहीं जाता, तब तक वह बातें करता ही रहता।

मैंने एक दिन थोड़े से कड़े और स्पष्ट शब्दों में उसे कहा कि वह मेरे क्लास में जाने के समय नहीं आये। परन्तु मेरे कहने का उसके ऊपर कुछ असर नहीं हुआ और उल्टा, उसने मुझे समझाते हुए कहा—'कोई बात नहीं, मैं भी तुम्हारे साथ क्लास में चलूँगा'। और सचमुच ही मेरे साथ वह क्लास में आने लगा। क्लास में वह मेरे साथ ही बैठा रहता और मुरली पूर्ण होते ही चुपचाप चला जाता। मेरी परछाई के समान वह मेरे साथ रहने की चेष्टा करने लगा। अब मैं उसके चिपकने के संस्कार से तंग आ चुका था। इसी दौरान मेरे जीवन में उल्टा परिवर्तन आया। मेरी मन-बुद्धि खोखली हो गई। मैं असंतुष्ट रहने लगा। ज्ञान-योग-सेवा से रुचि हट गयी और गप-शप, इधर की बातों में समय बिताने लगा। तब मुझे पूर्ण रूप से महसूस होने लगा कि इस दोस्त के कदम अगर यहाँ ही नहीं रोकूँगा तो वह मुझे लौकिक और अलौकिक दोनों जीवन से उठा देगा । मैं बाबा को सुबह कहने लगा — बाबा, इस दोस्त से मुझे बचाओ' ।

उन दिनों में अचानक मधुबन (माऊंट आबू) जाने का मेरा प्रोग्राम बना और वहां दिनांक ६.११.८७ के अव्यक्त बापदादा के महावाक्य सन्मुख सुनने का मौका मिला। उसी दिन मेरी बुद्धि का ताला खुल गया। इस मुरली में प्यारे बाप दादा ने ४ प्रकार की सेवा करके ब्लैसिंग (आर्शीवाद) प्राप्त करने की अद्भुत विधि बताई है। सारे दिन में स्व-सेवा, यज्ञ-सेवा, विश्व-सेवा या मंसा-सेवा में व्यस्त रहकर अपना भाग्य बनाने की अनोखी कलम बाबा ने मुझे दी। इसलिए मधुबन से लौटने के बाद, मैं उस दोस्त के आने के पूर्व ही घर से बाहर निकल कर क्लास में पहुँच जाता । क्लास के बाद किसी न किसी सेवा में अपने को व्यस्त रखना आरम्भ किया। उस दोस्त ने देखा कि अब मैं बहुत व्यस्त रहता हूँ और उसे मिलता नहीं। धीरे-धीरे उसकी मेरे प्रति रुचि कम हो गयी और उसने मेरे पास आना छोड़ दिया। परन्तु फिर एक दिन वह मेरे पास आया, थोड़ा-सा गर्म और नाराज़ होकर। आते ही उसने सुनाया — जाओ, तुम्हारे जैसे हजारों दोस्त मुझे मिलेंगे । उतनी हिम्मत मेरे पास है। देखना, तेरे विश्व-विद्यालय के ही किसी को मैं अपना साथी बनाऊंगा।'

ऐसा कहकर वह मेरे पास से चला गया। परन्तु सावधान ! हो सकता है कि वह आपके पास पहुँचने वाला हो आपको दोस्त बनाने, क्योंकि उसके सर्व को मित्र बनाने की कला पर मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है।

आप उस दोस्त का नाम जानना चाहते हैं ? उसका नाम है—'आलस्य'

योग मार्ग में सगन, लग्न और मग्न

सांसारिक रीति के अनुसार कन्या का अपने वर के साथ पहले-पहल जो नाता जोड़ा जाता है, उसे सगाई (Engagement) कहते हैं। उसी प्रकार, आत्मा की परमात्मा से जो सगाई होती है, उसका नाम 'योग' है। 'योग' की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि योग मार्ग बहुत ही सहज है क्योंकि यह तो प्राणों के पति परमात्मा को वरण करने ही का नाम है। आत्मा के पति तो हैं भी केवल एक परमात्मा ही, अतः उन्हें पहचान कर उन से सहज रीति से अपना घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ना ही योग-युक्त होना है। परन्तु पण्डितों ने पण्डिताई में पड़ कर 'योग' की बहुत ही कठिन परिभाषाएं और व्याख्याएं की हैं और प्राणायाम, आसन आदि-आदि को योग के साधन बतला कर योग को जनसाधारण के लिये अथवा प्रवृत्ति मार्ग एवं घर-गृहस्थी वालों के लिये एक हौआ बना दिया है। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि जैसे कन्या को अपने वर से नाता जोड़ने के लिये कोई प्राणायाम या आसनादि नहीं करना पड़ता उसी प्रकार 'योग' के लिये भी घण्टों एक ही आसन पर बैठने की अथवा प्राणायाम द्वारा श्वासों की गति को नियंत्रित (Control) करने की आवश्यकता नहीं है। बल्कि, जैसे कन्या सच्चे मन से अपने भावी पति ही की हो जाती है, वैसे ही योगी भी अपने हृदय रूपी आसन पर अपने प्राणों के पति परमात्मा को विराजमान करता है तथा श्वास-प्रश्वास में उस प्रीतम प्रभु की याद में लवलीन हुआ रहता है।

सच तो यह है कि जो लोग योग के लिये प्राणायाम और आसनों की आवश्यकता बताते हैं तथा आँखों को मूँद कर अचेत पत्थर की भाँति बैठे रहने का उपदेश करते हैं, उनके वचनों से सिद्ध है कि उनका मन अभी प्रभु के प्रेम में अच्छी तरह डूब नहीं है, उनकी आँखों में प्रीतम प्रभु के अतिरिक्त अभी कुछ और ही बसता है और उनके श्वासों में अभी कुछ और आशाएं हैं। वरना, जैसे भारत की कोई कन्या एक पुरुष से सगाई हो जाने के बाद अन्य पुरुषों को देखते हुए भी उन्हें परपुरुष मानती अथवा बहन-भाई की दृष्टि से देखती है, अर्थात् उसकी आँखें खुली होते हुए भी उसकी बुद्धि भटकती नहीं है, ठीक वैसे ही जिस मनुष्यात्मा ने सचमुच परमात्मा को पति रूप में वरण किया है, उसकी बुद्धि भी दूसरे-दूसरे लोगों की ओर भटक नहीं सकती, चाहे उसके नेत्र खुले क्यों न हों और चाहे उसके प्राण अनविरूद्ध क्यों न हों।

योग मार्ग में सगन

भारत में यह रिवाज है कि कन्या को वर के नाम, रूप, देश, गुण, धन्धे, स्वभाव आदि का परिचय कराया जाता है और, यदि हो सके, तो उसका फोटो या चित्र भी दिखाया जाता है। फिर कन्या की स्वीकृति लेकर वर के पास सगन भेजा जाता है। यह सगन सगाई की बात पक्की हो जाने का सूचक माना जाता है। इसी प्रकार, आत्मा की भी परमात्मा के साथ सगाई करने के लिये सब से पहले तो आत्मा को परमात्मा के दिव्य नाम, दिव्य रूप, दिव्य धाम, दिव्य कर्त्तव्य और ईश्वरीय गुणों आदि का परिचय (ज्ञान) कराने की आवश्यकता है। उसे भी अव्यक्त-मूर्त्त एवं विचित्र परमात्मा का चित्र दिखाया जाता है। जब आत्मा जान लेती है कि परमात्मा का दिव्य नाम 'शिव' है, उसका दिव्य रूप अति सुन्दर और मन-मोहक 'ज्योतिबिन्दु' है जिसके चित्र भारत में 'शिवलिङ्गम्' नाम से मिलते हैं, उसका धाम शिव लोक, ब्रह्मलोक अथवा परलोक है, वह सर्व ईश्वरीय गुणों का अविनाशी भण्डार है, वह ज्ञान का सागर, शान्ति का सागर, आनन्द का सागर, प्रेम का सागर और सर्व शक्तिमान् है और तीनों लोकों का नाथ है और सर्व भाव से उस ही की हो जाने से मेरा जीवन सदा-सुखी होगा, तो उसका मन परमात्मा को वरण कर लेता है, उसके प्रति अपना प्रेम समर्पित कर देता है। उसकी बुद्धि परमात्मा की ओर आकर्षित हो जाती है। फिर, चूँकि उसे ज्ञान द्वारा यह निश्चय हो जाता है कि ऐसा गुणवान्, ऐसा शक्तिशाली, ऐसा प्रेमी, ऐसा सुखदाता, ऐसा सुहाग और कोई नहीं, इसलिये उसका मन एक परमात्मा की स्नेह-युक्त याद में टिक कर एक-टिक हो जाता है और उसकी बुद्धि का भटकना बन्द हो जाता है।

अतः परमपिता परमात्मा का यथावत् एवं पूर्ण परिचय (ज्ञान) प्राप्त करना ही योग मार्ग का सगन है। परमात्मा का ज्ञान प्राप्त किये बिना आत्मा की सगाई अयथार्थ है क्योंकि उसकी बुद्धि पर-पुरुषों से हट कर उस एक प्रीतम परमात्मा की ओर एकटिक नहीं हो सकती और मन से वह उसी एक को अव्यभिचारी एवं यथार्थ रूप से वरण भी नहीं कर सकती। अतः परमपिता परमात्मा से योग-युक्त होने के लिये सब से पहले तो आत्मा को परमात्मा का परिचय प्राप्त करना चाहिये। तभी उसका मन अन्यान्य ओर से हट कर एक ईश्वर ही की ओर लगेगा, वरना बुद्धि-योग ठीक प्रकार से लग ही नहीं सकेगा।

योग में मग्न

परमपिता परमात्मा का परिचय होने के बाद मनुष्यात्मा की लग्न परमात्मा से लग जाती है। फिर वह लग्न में मग्न होने का पुरुषार्थ करती है। ईश्वर की लग्न में मग्न होना ही

योग-स्थित होना है। जैसे सगाई होने के बाद ज्युं-ज्युं दिन बीतते जाते हैं, त्यों-त्यों कन्या की लग्न अपने वर के प्रति बढ़ती जाती है और वह समझती है कि अब मुझे पियर घर से पति के घर जाना है, वैसे ही दिनों-दिन आत्मा की लग्न भी परमात्मा से बढ़ती जानी चाहिये, आत्मा को भी यह समझना चाहिये कि अब मुझे देह तथा देह के नातों से मुक्त हो कर शिवलोक को जाना है। योगी की पलकों में परमात्मा ही का प्यार समाया होना चाहिये, उसके हृदय में हरदम उस हरि-हर अर्थात् दुःख-हर्त्ता, सुख कर्त्ता की स्मृति होनी चाहिये। परमात्मा की याद में उसके रोम-रोम पुल्कित, चित्त हर्षित और मन आनन्दित हो उठना चाहिये। जैसे विवाह के दिन निकट आने पर, कार्य करते हुए भी कन्या का मन अपने पति ही की ओर लगा रहता है, अथवा जैसे कोई नव-वधू अपने पति के दफ़्तर चले जाने पर भी उसी की याद में रहती है, उसके लौट आने तक उसके मार्ग में आँखें बिछाए रहती है, उसकी राह देखते हुए वह अपना दिन व्यतीत करती है, उसको भोजन खिलाने के बाद स्वयं खाना खाती है और फिर सोते हुए भी उसी के स्वप्न लेती है वैसे ही सच्चे योगी का मन भी उस ज्योति स्वरूप, परमप्रिय परमात्मा की मस्ती में छका रहता है, उसके नेत्रों में उस ही की तस्वीर समायी रहती है। उसका मन एक परमात्मा ही पर न्यौछावर होता है। वह सोता है तो आत्मा के साजन अशरीरी परमात्मा के साथ, उठता है तो उसी की ओर उसका मन जाता है, उसे तो बस एक यही धुन लगी रहती है कि 'मैं उस परमात्मा ही की सजनी हूँ।' जैसे पतंगा शमा की रोशनी पर फ़िदा हो जाने के सिवा रह नहीं सकता, वैसे ही सच्चा योगी भी उस जागती-ज्योति अथवा चेतन शमा परमात्मा पर फ़िदा हो जाता है।

ईश्वर की लग्न एक सुहावनी अग्नि के समान है जिसे मनुष्य आत्मसात करना चाहता है। जैसे-जैसे लग्न बढ़ती जाती है वैसे-वैसे यह आध्यात्मिक अग्नि भी बढ़ती जाती है। इस लग्न रूपी अग्नि में आत्मा पवित्र हो जाती है, उसके संस्कारों का मैल धुल जाता है और चित्त एक ऐसी शक्ति और साथ-साथ ऐसा सुख अनुभव करता है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। लग्न में मग्न होने का अनुभव एक अनोखा अनुभव है। इस लग्न रूपी अग्नि में मनुष्यात्मा के जन्म-जन्मान्तर के विकर्म दग्ध हो जाते हैं। इस योग रूपी अग्नि को जगाने के लिये तो ज्ञान रूपी घृत, मन रूपी बाती और प्रेम अथवा लग्न रूपी अग्नि चाहिये। इसके लिये किसी मंत्र, यंत्र, तंत्र, हठ या जप की आवश्यकता नहीं है बल्कि मन की लग्न ही इसका मंत्र है, लग्न में मग्न होना ही तंत्र है और हार्दिक याद की अजपा जाप है।

स्पष्ट है कि योग कोई कठिन या कष्ट-साध्य क्रिया नहीं है बल्कि यह तो बहुत ही सहज और आनन्ददायक लग्न ही का नाम है। ज्ञान के आधार पर परमात्मा की लग्न में मग्न होना ही सहज योग है। अथवा, जैसे कन्या सगाई हो जाने पर अपने वर ही अमानत हो कर रहती है और स्वयं को अपने वर की वस्तु समझ कर सच्चे दिल से एक उस ही की हो कर रहती है, उसी प्रकार, अब स्वयं को आत्मा मान कर, ज्ञान द्वारा अपने मन का नाता परमात्मा से जोड़ना अथवा बुद्धि की सगाई परमात्मा से करना ही योग है।

पुनश्च, जैसे कन्या विवाह के लिये स्वयं को अनेकानेक प्रकार के शृंगारों तथा भूषणों से सुसज्जित करती है, माथे पर बिन्दी देती है और सुन्दर दिखाई देने के लिये साधन या यत्न करती है, ठीक उसी प्रकार, परमपिता परमात्मा के लग्न लगाने के अतिरिक्त, आत्मा को दिव्य गुणों रूपी शृंगार से सजाना भी है। आत्मा के लिये देही-निश्चय (Soul-Consciousness), अन्तर्मुखता, गम्भीरता, नम्रता, हर्षितमुखता आदि शृंगारों को तैयार करना और पवित्रता रूपी सौन्दर्य से आकर्षक बनाना ही आत्मा के लिये तैयारी करना है। आजकल तो वर किसी कन्या को अंगीकार करने स पहले पूछते हैं कि कन्या ने शिक्षा किस श्रेणी तक प्राप्त की है, वह हुनर अथवा कला कौनसी जानती है, उस में किसी प्रकार की कुरूपता, कोई दाग़ या बुरी आदत तो नहीं है और उसके साथ सोने के शृंगार कौनसे-कौनसे होंगे। **परन्तु परमात्मा रूपी वर आत्मा को स्वीकार करने से पहले यह देखते हैं कि आत्मा ने ईश्वरीय ज्ञान की शिक्षा कहाँ तक प्राप्त की है, उस ने दिव्य गुण कहाँ तक धारण किये हैं, उस ने दूसरों को भी आत्मा-परमात्मा का परिचय देकर उनकी सेवा करने की कला का कहाँ तक अभ्यास किया है, उसमें काम-क्रोधादि का कोई दाग़ या माया के कारण कोई कुरूपता तो नहीं है अर्थात् उसका गुण, कर्म, स्वभाव और प्रेम कैसा है? अतएव परमपिता परमात्मा का वरण करने लिये हमारे लिये दैवी गुणों को धारण करना ज़रूरी है।**

कहावत है कि 'कानी के विवाह में विघ्न ढेर' होते हैं। परन्तु केवल कानापन या शारीरिक कुरूपता या कमी ही विवाह में विघ्न रूप नहीं बनती बल्कि प्रायः देखा जाता है कि कन्या की शिक्षा की कमी, उसके धन या शृंगार की कमी और कोई बुरी आदत अथवा स्वभाव की वक्रता भी उसके विवाह के कार्य में विघ्न रूप हो जाया करती है। ठीक इसी प्रकार, यदि आत्मा में भी विकारों के कारण कुरूपता हो, मन की कोई वक्रता या कुटिलता हो, ईश्वरीय ज्ञान तथा दिव्य गुणों रूपी धन एवं शृंगार की कमी हो तो जब वह परमपिता परमात्मा की स्मृति में स्थित होना चाहता है तो उसका मन जमता नहीं है। उसके विकार अथवा दिव्य गुणों की कमी उसके लिये

विघ्न रूप हो जाते हैं। वे उसकी योग-स्थिति अथवा योग-निष्ठा में सहायक नहीं होते बल्कि बाधक होते हैं। मनुष्य की बुद्धि जन्म-जन्मान्तर से लक्ष्य-बोध से रहित होने के कारण चंचल हो चुकी है और वह एक-टिक न हो कर भटकती ही रहती है। अतः अब हमें चाहिये कि मुक्ति तथा जीवन्मुक्ति का यथार्थ बोध प्राप्त कर के, लक्ष्य को ठीक रीति से जान कर, परमपिता परमात्मा को ठीक रीति से पहचान कर हम आत्मा का दिव्य गुणों से शृंगार करें, इसके विकारों को मिटायें और बुद्धि की सगाई अव्यभिचारी रूप से उस परमपिता परमात्मा से करें—यही ईश्वरीय प्रीति की रीति है, योग-स्थित होने की यह विधि है।

अब जैसे आदि सनातन धर्म वालों के यहाँ पर रिवाज है कि ब्राह्मण ही सगाई का कार्य सम्पन्न करते हैं और विवाह पढ़ते हैं, वैसे ही आत्मा और परमात्मा की सगाई भी सच्चे ब्राह्मण ही करा सकते हैं। 'सच्चे ब्राह्मणों' से हमारा अभिप्राय आजकल के देह-अभिमानी, विकारी 'ब्राह्मण' नहीं है बल्कि स्वयं प्रजापिता ब्रह्मा के मुख द्वारा रचे हुए संगमयुगी ब्राह्मणों से है। प्रसिद्ध है कि परमपिता परमात्मा शिव का विवाह प्रजापिता ब्रह्मा ने तथा उस द्वारा रचे हुए पवित्र ब्राह्मणों ने किया। अब वही संगमयुग पुनरावृत्त हो रहा है। परमपिता परमात्मा शिव एक साधारण मनुष्य-तन में अवतरित हो कर स्वयं ही अपने दिव्य नाम, रूप, गुण, कर्त्तव्यों आदि का तथा इस सर्वोत्तम परन्तु प्रायः लुप्त योग का ज्ञान दे रहे हैं। उस मनुष्य का नाम उन्होंने प्रजापिता ब्रह्मा रखा है और उसके मुख द्वारा उन्होंने पवित्र ब्राह्मणों की रचना भी की है। उन्हीं के द्वारा अब आत्माएं निराकार परमात्मा से योग-युक्त हो सकती हैं और हो रही हैं। अन्य कोई मनुष्य यह योग नहीं सिखा सकता।

फिर जैसे विवाह के समय, अग्नि प्रज्वलित करके वर के हाथ में वधु अपना हाथ देती है, उसके पलड़े से अपना पलड़ा बान्धती है और उसके पीछे-पीछे कदम पर कदम रखते हुए चलती है, ठीक वैसे ही योगी भी ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित कर के अपना हाथ परमात्मा के हाथ में देता है, अर्थात् उसके अर्पणमय होता है तथा उसके साथ सच्चा तथा वफ़ादार होकर रहने का वचन देता है। वह भी अपना पलड़ा परमात्मा से बान्ध करके उसके पीछे-पीछे चलता है अर्थात् परमात्मा की दी हुई आज्ञाओं पर आचरण करता है, नियमों का पालन तथा अनुकरण करता है और सम्बन्ध को स्थायी रखने का प्रण लेता है।

जब आत्मा इस प्रकार परमपिता परमात्मा से अपने मन का नाता जोड़ती है, बुद्धि की सगाई करती है अथवा चित्त को उसके अर्पण कर के उसे वर लेती है तो जैसे संसारिक रीति में वर अपनी वधु को अपने घर ले जाता है और अपना सारा घर उसको अर्पण कर देता है वैसे ही परमात्मा शिव भी आत्मा को अपने परमधाम अर्थात् मुक्तिधाम में ले जाते हैं और बाद में उसे वैकुण्ठ का राज्य-भाग्य दे देते हैं। ●

जागो-जागो हे भारतवासी

– ब्र०कु० उषा, दिल्ली (पालम)

जागो-जागो हे भारतवासी घोर अंधियारा छाया है
काम चिता पर मानव ने संपूर्ण अधिकार जमाया है
वंचित करता सर्वशक्तियों से फिर भी क्यूँ अपनाता है
ब्रह्मचर्य का पालन कर अब शिवबाबा ने बताया है।
जागो-जागो हे भारतवासी ....

वो तो आज पड़ा लोभ में मान, शान अभिलाषी है
आकर्षण से झट समझता अपना इसको पाना है
बनना था आत्माभिमानी बन बैठा अभिमानी है।
जागो-जागो हे भारतवासी ....

हर मानव के चेहरे पर क्रोध की ज्वाला भभकती है
भाई भाई के खून का प्यासा मान, मर्यादा बिसरी है
त्यागे क्रोध यदि मानव तो शान्ति स्थापन हो सकती है।
जागो-जागो हे भारतवासी ....

मोह, माया की जंजीरों में फँसा दुर्गति पाता है
रोता, चिल्लाता खूब तड़फता सहारा नहीं वो पाता है
तोड़ विकारों की जंजीरों को पहचान अपनी पा सकता है।
जागो-जागो हे भारतवासी ....

मंथरा अभी भी जिन्दा है

ब्र० कु० प्रो० कालिदास, अहमदाबाद

साधनापथ के यात्री को अपने जीवन को उर्ध्वगति पर ले जाने के लिए अनेक दिव्यगुणों की धारणा करनी आवश्यक है। उनकी सूक्ष्मता में, गहनता में जाना जरूरी है। मामूली-सी त्रुटि भी साधना रूपी नाव को छेद लगाकर उसे डुबो सकती है। इसके लिये उसे जीवन की अशुद्ध वृत्तियों को जानकर उससे मुक्ति पाने के लिए ठोस प्रयास करने पड़ते हैं। ऐसी अशुद्ध वृत्तियों में से एक वृत्ति है—कान फूँकना। रामायण में इस वृत्ति का वर्णन मंथरा के पात्र द्वारा किया गया है।

जब इन्सान में कोई दिव्य विशेषता नहीं होती है, तब वह अपने आपको विशेष आत्मा दिखाने के लिए कान फूँकने की राह अपना लेता है। इस वृत्ति का पालन-पोषण करनेवाले लोगों की भी इस दुनिया में कमी नहीं है। इस तरह जाने अनजाने में ऐसी वृत्ति को पोषण देने से मनुष्य में अनेक आसुरी वृत्तियाँ उसके साथ-साथ इकट्ठी हो जाती है। कहावत है कि मूर्ख दोस्त से समझदार दुश्मन अच्छा होता है। ऐसी मनोवृत्ति वाली आत्मा जितना नुकसान कर सकती है, उतना समझदार, शिक्षित दुश्मन भी नहीं कर सकता।

मंथरा की वृत्ति धारण करनेवाली आत्मा शांति से बैठ भी नहीं सकती। वह किसी ना किसी बहाने वार्तालाप की शुरूआत करती है और उल्ट जाँच करती हुई प्रश्नमाला रख देती है। जब कोई भोला, सरल व्यक्ति उसे अपनी बातें बताता है तब वह सियार की तरह मुँह रखकर बातें सुनती है। उस वक्त मानो उसे अपनी खुराक मिलती है क्योंकि कान फूँकना—यह उसका स्वभाव, उसका जीवन बन जाता है।

मंथरा की मनोवृत्तिवाली आत्मा ऐसा कहती रहती है कि मैं इधर की बात उधर नहीं करती पर ऐसी आत्मा कभी गुप्त नहीं रह सकती। ऐसी आत्मा अपने स्वभाव से मजबूर होती है।

कान फूँकने की वृत्ति ऐसा विकृत स्वरूप है कि जिस दिन उसे ऐसा मौका नहीं मिलता, ऐसा विकर्म नहीं करती तब तक उसे चैन नहीं होता। उसकी नींद भी हराम हो जाती है। रात को सोते वक्त भी मानो वह प्लॉन बनाती रहती है कि मैं कैसे अपनी इस वृत्ति को साकार करूं।

सांप्रत समाज की विषमताओं के फलस्वरूप ऐसी रोगी मनोवृत्ति वाली आत्मा को जब महत्त्व मिलता है, तब ऐसा लगता है कि बंदर को शराब पिला दी गई है, और ऐसी आत्मा अपनी इस कला (?) से ऐसा समझती है कि 'हल्दी की गाँठ मिलने से मैं पंसारी बन गई'। ऐसा पात्र आँखों के सामने आ जाता है। ऐसी हल्की मनोवृत्ति को पोषण देकर आत्मा स्वयं अपना पतन करती है। मंथरा की वृत्ति स्त्री-पुरुष दोनों में, सभी में हो सकती है। वास्तव में यह मनोविकार है, मंथरा का कर्म, दासी-कर्म है।

ऐसी वृत्ति के विस्तार में न जाकर हम सोचें कि कैसे हम ऐसी आदत से छुटकारा पा सकते हैं?

अपना जीवन हमें परमात्मा की ओर से मिली अमूल्य सौगात है। उसे अच्छी तरह, सफलता से जी सकें—ऐसा अपना जीवन-ध्येय होना चाहिए। हम हमें मिली शक्तियों का उपयोग रचनात्मक कार्यों में करेंगे तो ऐसी वृत्ति का जीवन में कोई स्थान नहीं होगा।

आजकल समाज में विकारों के विकृत स्वरूप काँटे की तरह फैल गए हैं। तब हम उसमें और वृद्धि न करें। कान फूँकने की वृत्ति द्वारा दुश्मनों का निर्माण करने का कार्य न करें, लेकिन सागर की तरह समाने की शक्ति का प्रयोग करें। किसी आत्मा के अवगुणों को, दोषों को समा लें। चाहे कैसी भी आत्मा हो, उसमें कोई ना कोई गुण, विशेषता तो अवश्य होती ही है, तो हम परचिंतन कला (?) का त्याग करके, कान फूँकने की वृत्ति को छोड़ दें। आत्मा की विशेषता को ग्रहण करें, उसे प्रोत्साहन दें तो दुश्मन भी दोस्त बन सकता है।

अपना मस्तिष्क दिव्यगुणों का गुलदस्ता बने—यह हमारा जीवन ध्येय होना चाहिए। किसी के अवगुणों को देखने से, कान फूँकने से हम अपने मस्तिष्क को वेस्ट पेपर बास्केट (कूड़ादान) बनाते हैं। औरों के दोषों को मस्तिष्क में धारण करना—यह गंदगी उठानेवाले कौआ का कार्य है। हमें तो कोयल समान मीठा बनना है।

यदि कोई ऐसा समझता हो कि उस की मंथरा वृत्ति उसे महान् बनाएगी, तो यह भ्रम है। इस कार्य के लिए निमित्त बनानेवाले, कार्य सौंपने वाले भी उसका मूल्यांकन अच्छा नहीं करते। उसका केवल कार्य सिद्धि के लिए साधन के रूप में उपयोग करते हैं। अंत में उसे ही नुकसान होता है।

इस प्रकार की मनोवृत्ति धारण करने वाली आत्मा कभी भी महान् बन नहीं सकती। मातृहृदय की ममता, वात्सल्य खोकर केवल नफरत की भावना की वृद्धि करना—ऐसी कुमति इन्सान को कभी नहीं अपनानी चाहिए। यह ऐसी विकृत

मनोवृत्ति है जिसे उसकी और सखियाँ मिल जाती हैं। ईर्ष्याभाव जगाना, बात बढ़ाकर कहना या विकृत स्वरूप में कहना, कभी-कभी कल्पना के रंग भरकर कहना—यह विकृतियाँ कान फूँकने की सखियाँ हैं। जब समाज में इन्सान-इन्सान के बीच अंतर बढ़ता जाता है, समय भी भावी का संकेत दिखा रहा है तब हम शुभ संकल्पों के आंदोलन फैलायें। यह कार्य करने योग्य है।

मानव जीवन का एक-एक पल बहुत मूल्यवान् है। हम शांति से सोचने पर समझ सकते हैं कि जीवन का अमूल्य हिस्सा अपनी ऐसी आसुरी वृत्तियों को पोषण देने में गँवा देते हैं। इतने समय में हम किसी के आँसू पोंछ सकते हैं, अच्छा पढ़ा सकते हैं, सोच सकते हैं, किसी के सुख-दुःख में सहयोगी बन सकते हैं, किसी को जीवनोपयोगी मार्गदर्शन दे सकते हैं, कुछ अच्छा लिख भी सकते हैं। अपनी ये घड़ियाँ किसी के आनंद, उल्लास, प्रेरणा, प्रोत्साहन, सांत्वना देने में खर्च कर सकते हैं। तो वर्तमान और भविष्य के लिए सत्कर्म का भाग्य बना सकते हैं। यदि मानव गंभीरता से सोचे, तो कान फूँकने की आदत से मुक्त हो सकता है।

मंथरा की प्रवृत्ति कभी छिप नहीं सकती। ऐसी आत्मा को कोई अपने निकट नहीं आने देता, उसे निकट का स्वजन, स्नेही, दोस्त बनने नहीं देता। कभी लोग उसका उपहास भी करते हैं। ऐसी अपमानित स्थिति में जीने से यह बेहतर है कि हम इस मलिन वृत्ति से छुटकारा पा लें।

दुनिया में सत्कर्म करने वालों को, देश के कल्याण के लिए कार्य करनेवालों को सब सम्मान देते हैं, पर ऐसी वृत्तियों का विकर्म बनाने वालों के लिए कभी सम्मान समारोह नहीं होता। ऐसी आत्मा नौकरी, धंधे से मुक्ति पाती है, तब लोग खुशी का अनुभव करते हैं। हमें क्या करना है—जीवन में साथियों के पास सुखमय स्मृतियाँ रख जाना है या व्यक्तित्व को लज्जित करने वाले कर्मों की छाप छोड़ जाना है? इन्सान यदि तटस्थ भाव से सोचता है तो ऐसी वृत्ति को पोषण देने से रुक जाता है।

मानव के जीवन में शुद्ध-अशुद्ध वृत्तियाँ होती ही हैं। उसके सामने उसे लगातार संघर्ष करना पड़ता है। रामायण-कार ने मानव जीवन के शाश्वत भावों का चित्रण कलात्मक ढंग से किया है। इससे इस ग्रंथ ने टी०वी० के परदे से लोकप्रियता प्राप्त की है। जब तक मानव में कान फूँकने की वृत्ति, ईर्ष्या वृत्ति, इधर की उधर करने की वृत्ति रहेगी तब तक मंथरा जिन्दा है।

शादनगर— सब के सहयोग से सुखमय संसार योजना के अन्तर्गत आयोजित एक समारोह में ब्र० कु० शशिप्रभा प्रवचन करते हुए। मंच पर केशमपेट के मण्डलाध्यक्ष भ्राता अंजय्या जी, बहन एम० इन्दिरा, एम०एल०ए०.तथा अन्य उपस्थित हैं।

जगतमाता-पिता की वृत्ति एवं स्थिति

ब्र०कु० रमेश, गामदेवी, बम्बई

मधुबन में अव्यक्त बापदादा जब व्यक्तियों से, पार्टियों से और उसमें भी विशेष माताओं से मिलते है तब कई बार माताओं को कहते हैं—"जगतमाता कहां तक बनी हो? एक-एक माता जगतमाता बन जाए तो विश्व का कल्याण बहुत जल्दी हो जाये।" अर्थात् जगतमाता के संबंध में उसकी वृत्ति और व्यवहार कैसे हों? क्या पुरुष तनधारी पुरुषतन के कारण जगतपिता का संबंध और व्यवहार करे या नहीं? क्या माताओं के लिये जगतमाता तो पुरुष के लिया जगतपिता की दृष्टि हो सकती है? क्या पुरुष तनधारी जगतमाता का स्वरूप या सम्बन्ध की धारणा कर सकता है? इस बात पर मेरे दिल में अनेक बार प्रश्न उत्पन्न होता था। तो उसी कारण मैंने पहले कई भाई-बहनों को पूछा कि उनका अनुभव क्या है? और फिर सोचा कि यह तो गुप्त अंदर की धारणा है, इसमें शरीर की लौकिक आयु भी मददगार बनती है। ज्ञान के तथा योग के प्रयोग करना मुझे अच्छा लगता है। उसी कारण इस भाव में जब अपने दैवी परिवार की अन्य आत्माओं से मिलना होता था तो स्वयं की वृत्ति और स्थिति में जगत माता-पिता की स्थिति में स्थित होने का पुरुषार्थ करता। स्थिति से उसी प्रकार के बल की प्राप्ति भी होने लगी। जैसे विज्ञान ने वातानुकूल साधन बनाकर वायुमंडल में परिवर्तन करने वाले साधन बनाये हैं, उसी तरह जगत माता-पिता की सूक्ष्म स्वस्थिति से उसी के अनुरूप रूप, चिंतन, स्वभाव और प्रवृत्ति होती थी। मां-बाप की अपने बच्चों के प्रति रहम की दृष्टि, पवित्र दृष्टि सहज होती है। उसी तरह मेरी दृष्टि वृत्ति में रहम और पवित्रता (सूक्ष्म) विशेष आने लगे। मां-बाप को अपने बच्चे सदा राजदुलारे लगते हैं, उनकी विशेषता का दर्शन होता है। उसी रीति मेरी वृत्ति में परिवर्तन होने लगा—गुणग्राही दृष्टि, विशेषता देखने की दृष्टि विशेष बनने लगी। अज्ञान काल की एक बात है। एक बार मैंने देखा कि एक १३-१४ मास का बच्चा अपनी टांगें जोर-जोर से हिला रहा था और टांगे उसकी मां को लग रही थी। मैंने मां को कहा—देखो आपका बच्चा आपको लातें मार रहा है। मां ने हँसकर जवाब दिया—'अरे, मेरा मुन्ना तो साईकिल चला रहा है।' मैं तो उस बच्चे की लातें खा भी नही रहा था और वह माता लाते खाती थी। फिर भी मुझे लातें लगी और साइकिल दिखाई नही पड़ी और उस माता को लाते लगती नहीं थी—साईकिल चलाता दिखाई पड़ा। कष्ट के बदले में वह माता गौरव अनुभव कर रही थी। मैंने समझा माता-पिता की भूमिका में निंदा-अपमान में स्थिति एकरस करना सहज होगा।

अन्य आत्माओं प्रति किया। मेरी इस वृत्ति का प्रतिसाद अच्छा उसी रूप से मिलने लगा। सामने वाली आत्मा सामना करने के बजाए साथ जल्दी देती थी। बाद में मैंने यह प्रयोग व्यवहार में और व्यवसाय के कारण संपर्क में आने वाले व्यक्तियों के साथ करना शुरू किया। तो उन्हों का प्रतिसाद (Respond) भी अच्छा लगता था। 'उनका वकील हूं'—इस भाव के बदली में कई कहने लगे—आप तो हमारे पिता के समान हो। फिर मैंने यह प्रयोग अर्थात् अपनी स्ववृत्ति का, ज्ञान के संपर्क के कारण मार्गदर्शन प्राप्त करने आने वाले व्यक्तियों से भी किया। अभी भी याद है विदेश-यात्रा के समय एक स्थान पर एक ४५-४६ वर्ष की माता मार्गदर्शन लेने के लिये आई थी। लौकिक में तो वह नानी (Grand mother) भी बन गई थी। तब पहले मन में प्रश्न उत्पन्न हुआ कि इस बुजुर्ग बहन के प्रति मात-पिता की वृत्ति कैसे धारण करूं? शिवबाबा को परमपिता के रूप में तथा ब्रह्माबाबा को आदि पिता के रूप में एक मिनट याद किया और सेकंड में बाबा की शिक्षा याद आई—आप बच्चे तो इस कल्पवृक्ष के आदि पत्ते हो। तो आप भी आदि पिता के साथ-साथ आदि पत्ते हो तो मास्टर आदि पिता हो। और तुरंत ही वह रूप और वृत्ति हो गई। १५-२० मिनट उस माता को मार्गदर्शन दिया। बाद में उस माता ने अपनी सखी (जो उसको मार्ग दर्शन अर्थ सेवाकेन्द्र पर लाने में निमित्त बनी थी) को कहा कि आज बहुत सालों के बाद मैं अपने पिता के साथ बात करती हूं, ऐसा अनुभव हुआ। रमेश भाई की बातें जैसे रमेश भाई सुना रहे हैं, ऐसा नही परन्तु मेरे पिता सुना रहे हों—ऐसा सुखद लगा।

शिवबाबा ने अब कहा भी है कि बच्चे सर्व संबंधों की अनुभूति कराने का ज्ञान तथा शक्ति आप बच्चों में है। तो जरूर हम विविध संबंधों का अनुभव अन्य आत्माओं को करा सकते हैं! तो क्यों नहीं हम विविध रूप से अन्य आत्माओं की सेवा करें अर्थात् जैसा कहने में आता है—जैसा देश वैसा भेष या जैसा समय वैसा वेश— उसी तरह जैसी जरूरत वैसा स्व-स्वरूप या स्वस्थिति। मेरा अनुभव है कि एक बार आत्मिक अवस्था में स्थित हो जाते हैं तो बाद में भिन्न-भिन्न

(शेष पृष्ठ २२ पर)

ज्ञान योग, कर्म योग, संन्यास योग

भारत अपनी योग-विद्या के कारण प्रसिद्ध रहा है। परन्तु बहुत-से लोग 'योग' के अनेक नामों को सुनकर सोच में पड़ जाते हैं कि क्या 'योग-मार्ग' एक ही मार्ग है या इनमें भिन्नता है? योग के अनेक नामों में से सहज योग, ज्ञान योग, कर्म योग, संन्यास योग, राज योग, हठ योग, तत्व योग इत्यादि नाम अधिक सुनने और पढ़ने में आते हैं। परन्तु देखा जाय तो वास्तविक योग, जिसकी शिक्षा स्वयं परमपिता परमात्मा अथवा गीता के भगवान् देते हैं, एक ही है। हठ योग, तत्व योग इत्यादि योग मनुष्यों द्वारा सिखाये गये हैं। गीता के भगवान् जिस योग की शिक्षा देते हैं, वह योग ज्ञान पर आधारित होने के कारण 'ज्ञान-योग' कहलाता है। उसे ही 'बुद्धि योग' भी कहते हैं क्योंकि उसका अभ्यास बुद्धि द्वारा होता है। यह 'ज्ञान योग' फिर 'सहज योग' भी कहलाता है और क्योंकि समझ अथवा ज्ञान से कार्य सहज हो जाता है और क्योंकि यथार्थ रीति से परमात्मा से योग-युक्त होने से शक्ति मिलती है जिससे स्वरूप-स्थिति सुगम हो जाती है, इस कारण ज्ञान योग ही का पर्यायवाची नाम '**सहज योग**' भी है। इसके अतिरिक्त, क्योंकि इस सर्वोत्तम योग द्वारा मन-जीत (वास्तव में माया-जीत) बनने से मनुष्य जगत्-जीत बन जाता है इसलिए इसे '**राज योग**' कहते हैं और इस द्वारा जीवन में दिव्य गुण आने के कारण इसे '**दैवी प्रवृत्ति मार्ग**' भी कहते हैं। परन्तु सरलता के लिए इस एक ही मार्ग के अनेक नामों में से हम एक नाम '**ज्ञान योग**' चुन लेते हैं।

अब दूसरी विचार योग्य बात यह है कि परिचय सहित परमात्मा की याद में रहते हुए भी कर्म तो करना ही होता है। कर्म के बिना न तो जीवन निर्वाह हो सकता है और न दूसरे पर आधारित होने से मनुष्य कर्म-बन्धन से मुक्त ही हो सकता है। अतः कर्म करते हुए भी ज्ञान सहित परमात्मा से युक्त होने के मार्ग का नाम '**ज्ञान योग कर्म योग**' ठहरा।

इसके अतिरिक्त, यह भी एक अकाट्य सत्य है कि जिस वस्तु को प्राप्त करना हो, जिस सत्ता का अनुभव करना हो, मन को उसमें समाहित करना अथवा लगाना होता है। अन्यथा जिस ओर मन होगा प्राप्ति या अनुभूति तो उस ही वस्तु की होगी। अतः ईश्वर का परिचय प्राप्त हो जाने पर तथा कर्म में तत्पर रहते हुए भी, परमात्मा की सच्ची, आन्तरिक, गहरी याद में रहने के लिए मन का बाह्य विषयों से निरोध कर ईश्वर ही के मनन-चिन्तन में लगाना आवश्यक है। मन को सब लौकिक गुरुओं, शास्त्रों, मतों, सम्बन्धों विषयों इत्यादि से निरुद्ध करके पारलौकिक गुरु एवं पारलौकिक माता-पिता परमात्मा ही से युक्त करना अनिवार्य है। इस प्रकार मन को एक ओर से हटाने और दूसरी (ईश्वरीय) ओर लगाने को कहा जाता है-'**संन्यास योग**'। अतः प्रभु-प्राप्ति के मार्ग का पूर्ण परिचयात्मक नाम हुआ-'**ज्ञान योग, कर्म योग, संन्यास योग**'।

केवल 'ज्ञान योग' अथवा 'कर्म योग' नाम देना पर्याप्त नहीं क्योंकि बहुत से तथा-कथित ज्ञान-योगी लोग कर्म-धर्म को छोड़कर जंगलों में जा बसते हैं जो कि एक अनुचित बात है और इसी प्रकार, बहुत-से लोग परमात्मा का परिचय पाये बिना तथा निरन्तर उसकी याद में निर्विकारी और अव्यभिचारी रीति से स्थिर हुए बिना कर्म में तत्पर रहने ही को समझते हैं कि वे 'कर्म योगी' हैं यह भी अनर्थ है क्योंकि ज्ञान के बिना तो योग असम्भव है और ज्ञान योग के बिना विकर्म दग्ध नहीं हो सकते। ऐसे ही कई जिज्ञासु कर्म-धर्म और घर-बार छोड़कर, परमात्मा के परिचय से अनभिज्ञ, अपने को प्रभु पर आश्रित मानते हुए विचरते और अपने को 'संन्यास योगी' बताते हैं। इस कारण इन सब प्रकार के अपूर्ण अथवा असत्य मार्गों से विलग तथा स्पष्ट करने के लिए परमात्मा की प्राप्ति के एकमात्र मार्ग का पूर्ण नाम है-"**ज्ञान योग, कर्म योग, संन्यास योग**"। जैसे अनेक 'कर्मचन्दों' तथा गाँधियों' से पृथक करने के लिए किसी का पूरा नाम 'मोहनलाल कर्मचन्द गाँधी' रख दिया गया वैसे ही इस मार्ग के विषय में जानना चाहिए। तीन नामों का यह अभिप्राय नहीं कि ये तीन अलग-अलग मार्ग हैं, बल्कि यह एक ही मार्ग का पूर्ण नाम है।

परन्तु कुछ लोग समझते हैं कि 'ज्ञान योग', कर्म-योग', तथा 'सन्यास योग' भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। वे कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य के संस्कारों के एवं स्वभाव के अनुसार उसे भिन्न-भिन्न मार्ग चाहिए। वस्तुतः बात इस प्रकार है कि कुछ मनुष्य ज्ञान-प्रधान होते हैं; उनकी बुद्धि तीक्षण होती है। उनमें शारीरिक कर्म गौण होता है। परन्तु जो थोड़ा-बहुत कर्म वे करते हैं, उस समय योग में तो उन्हें भी स्थित रहना ही होता है और मन को विषय-पदार्थों से हटाकर परमात्मा में 'मन्मना (संन्यास योग) तो करना ही होता है। अतः कर्म योग और संन्यास योग से पृथक किसी अन्य मार्ग पर वे ज्ञान-योगी भी नहीं जाते। इसी प्रकार कुछ लोग शारीरिक दृष्टिकोण से अधिक समर्थ होने के कारण कर्म योग में अधिक कुशल और सफल होते हैं। परन्तु वे भी यदि गूढ़ ज्ञान को न भी समझते हों तो भी कर्म करते समय, वे जिसे परमात्मा मानकर याद करते

शेष पृष्ठ ३१ पर

अम्बाला—(शहर) में आयोजित 'विश्व कल्याण मेले' का अवलोकन करती हुई बहन अमृता सिंगल, सी०एम०ओ०, अम्बाला

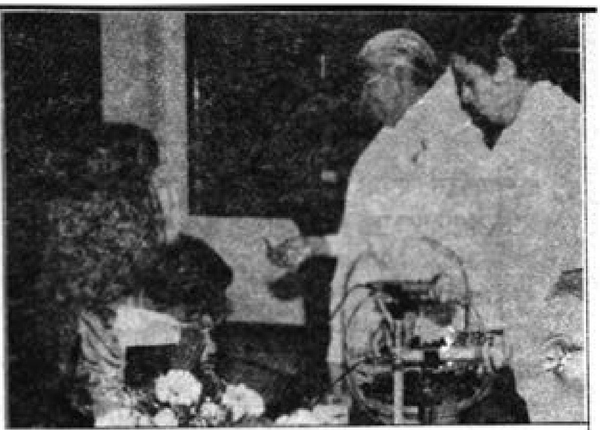

बैंकाक—ब्र० कु० दादी चन्द्रमणि जी सुखमय संसार के लिये स्वस्थ व्यवहार पर भाषण करने के पश्चात् प्रसाद बांटते हुए।

मुज़फ्फरपुर—डाक्टरों के प्रोग्राम का उद्‌घाटन करते हुए महाकवि आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री जी एवं प्रसिद्ध डॉ० भ्राता टी० के० झा तथा अन्य।

देगलूर—सेवाकेन्द्र पर अन्ध विद्यार्थियों के लिए एक कार्यक्रम रखा गया। चित्र में कार्यक्रम में पधारे विद्यार्थी एक ग्रुप फोटो में दिखाई दे रहे हैं।

दिल्ली (शक्तिनगर)—आध्यात्मिक बैंक के उद्‌घाटन अवसर पर बाएं से) ब्र०कु० सुधा, ब्र०कु० चक्रधारी, भ्राता आर०एल० गुप्ता जी, भ्राता स्टीव नारायण जी, श्रीमति बेट्टी नारायन तथा तोष गुप्ता जी।

दिल्ली (हरीनगर) सेवाकेन्द्र द्वारा आयोजित 'राजयोग प्रदर्शनी' का अवलोकन करने के पश्चात् मोतीनगर सहकारी भण्डार के महाप्रबन्धक भ्राता शर्मा जी अपने विचार लिखते हुए दिखाई दे रहे हैं।

ज्वाली (हि०प्र०)—में आयोजित आध्यात्मिक प्रदर्शनी में चित्रों पर व्याख्या लेने के पश्चात् भ्राता चन्द्रकुमार जी, वन मंत्री, हिमाचल सरकार अपने विचार लिख रहे हैं। साथ में ब्र०कु० राज बहन बैठी हुई हैं।

बम्बई—(बोरीवली) सेवाकेन्द्र पर बच्चों के लिए आयोजित एक कार्यक्रम में उपस्थित बच्चे एक ग्रुप फोटो में दिखाई दे रहे हैं।

जैसलमेर—में 'विश्व सहयोग आध्यात्मिक बैंक' का उद्घाटन डा० अमर चन्द जी, मार्ग दर्शीय बैंक अधिकारी, स्टेट बैंक जयपुर एण्ड बीकानेर तथा अन्य मोमबत्तियां जलाते हुए कर रहे हैं।

काकीनाड़ा—'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' योजना के उद्घाटन अवसर पर सुख ब्रह्मा आश्रम के स्वामी श्री विद्या प्रकाशनन्दा अपने विचार प्रकट कर रहे हैं।

शारीरिक स्वास्थ्य के लिए सामान्य लोगों की अज्ञानता

डा० गिरीश पटेल, बम्बई

थोड़े दिनों पहले ही भारत के गाँवों और छोटे-छोटे शहरों में स्वास्थ्य के प्रति मान्यताओं को देखने और सुनने का मौका मिला। भारत के लोगों की स्वास्थ्य के प्रति जाग्रति और स्वास्थ्य स्तर समझने का अवसर प्राप्त हुआ।

सामान्य लोग भी स्वास्थ्य के विषय में बहुत जाग्रत हैं। बहुत स्थानों पर हमने लोगों को उनके स्वास्थ्य के बारे में बताने की विनती की। थोड़े लोग स्वास्थ्य को बहुत महत्त्व देते थे, लेकिन ज्यादा से ज्यादा लोगों का ख्याल था कि रोग का अंश मात्र न होना माना अच्छा स्वास्थ्य है। यह एक बहुत बड़ी भूल है। रोग के अंश तो रोग बहुत फैल जाने के बाद ही दिखते हैं, क्योंकि रोग तो दरिया में तैरती हुई हिमशिला (Ice berg) के समान है। हिमशिला का थोड़ा ही भाग पानी के बाहर दिखाई देता है, वैसे ही रोग का भी थोड़ा ही भाग रोग के अंश में दिखता है। स्वास्थ्य-चेतना अभियान के दौरान ऐसी और कई झूठी मान्यताओं को दूर करने का अवसर मिला जिससे लोगों के स्वास्थ्य का स्तर ऊँचा हो।

हमने यह भी देखा कि ६०% से ज्यादा लोग दवा, इन्जेक्शन द्वारा रोग का इलाज करने में और उनके आरोग्य की पूरी-पूरी जिम्मेवारी डॉक्टर पर ही है— ऐसा मानते हैं। यह एक बहुत बड़ी भूल है क्योंकि ज्यादा से ज्यादा रोगों को हम रोक सकते हैं। यह रोग हमारी झूठी जीवन पद्धति से ही होता है। उदाहरण के तौर पर हृदयरोग जिसका प्रमाण बहुत ही तेजी से भारत में बढ़ रहा है। इसके पीछे के कारण हमारी वर्तमान जीवन पद्धति में ही उपस्थित है। इसीलिए ही थोड़े समय पहले मृत्यु के कारणों में हृदयरोग का स्थान नौवा था जो आज तीसरा हो गया है। अगर हम अपनी जीवन-पद्धति और अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं लायेंगे तो वह समय दूर नहीं कि जब भारत में भी विदेश के समान हृदयरोग का स्थान पहला हो जायेगा।

भारत के गावों में अभी भी बहुत अंधश्रद्धा है। एक गाँव में खाँसी से पीड़ित एक बालक को जाँचा तो मालूम पड़ा कि उसने ऐसा चटका देने में आया था, जब माँ को पूछा गया कि उसने ऐसा क्यों किया तो जवाब मिला कि हम लोग तो यह इलाज तो बहुत पुराने समय से करते आ रहे हैं। ऐसे ही अनेक स्थानों पर रोग होने के कारण और उनके इलाज की सामान्य समझ भी पहुँच नहीं सकी है।

शहरों में हमको एक नयी मनोदशा का दर्शन हुआ। छोटे-बड़े शहरों में बहुत बीमार लोग हमको ऐसा कहते हैं कि डॉक्टर, कोई ऐसी शक्तिशाली दवाई दो कि हम तुरन्त तन्दरुस्त हो जाएं। लोग बहुत ही शक्तिशाली दर्दनाशक और रोग को नाश करने वाली दवाई लेने में मान्यता रखते हैं। यह भी एक बहुत बड़ा अज्ञान है क्योंकि ऐसा करने से रोग से मुक्त होने के लिए शरीर में जो प्रक्रिया निर्माण होती है वह सब दब जाती है। उदाहरण के तौर पर बुखार आना यह जंतुओं को नाश करने के लिए एक आवश्यक प्रक्रिया है। बुखार का इलाज करना जरूरी है, परन्तु उसका मुख्य कारण जान लेना जरूरी है। ऐसा न करने से बीमारी फिर से हो जाती है। साथ-साथ कुछ रोग ज्यादा दवाई लेने से ही होते हैं। २०% रोग ऐसी ज्यादा दवाई लेने के कारण होते हैं!

इस अभियान के दौरान हर एक जाति और स्तर के लोगों की सेवा की गई। डॉक्टरों का झुंड हरिजनवाड़ी और जेल में भी सेवा के लिए गया। जेल में ज्यादातर निराशा के शिकार लोगों का दर्शन हुआ। इसी निराशा से ही उनके शारीरिक रोग बढ़ते थे। जब व्यक्ति की जीवन जीने की इच्छा समाप्त हो जाती है, तब वह अनेक रोगों का शिकार हो जाता है। कैदियों को दवा के साथ-साथ राजयोग के अभ्यास द्वारा मनोबल मजबूत करने की कला सिखाई। वृत्ति को परिवर्तन करने का महत्त्व समझाया।

राजयोगी डॉक्टरों ने कुल मिलाकर लगभग १०,००० डॉक्टरों से मुलाकात की। डॉक्टर बीमार लोगों को एक मशीन की तरह जाँचते हैं और उनका इलाज करना माना मशीन को रिपेयर (मुरम्मत) करना, ऐसा समझते हैं। इस समस्या को दूर करने के लिए बहुत प्रयत्न किया। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझाने पर ज्यादा से ज्यादा डॉक्टर भी वर्तमान चिकित्सा पद्धति में कमी स्वीकार करते हैं और इसके बाद उसमें परिवर्तन लाने का संकल्प करते थे।

यह अभियान जब राजस्थान से गुजर रहा था, तब वहाँ के डॉक्टरों की हड़ताल चल रही थी। हड़ताल होने के कारण बीमार लोगों को बहुत तकलीफ़ होती थी। इस अभियान के डॉक्टरों से दवा लेकर लोगों को बहुत राहत अनुभव हुई। हड़ताल पर गए हुए डॉक्टरों ने भी बीमार लोगों को जाँचने में और उनको दवा देने में मदद की। इस अनुभव से लगा कि लोगों की नि:स्वार्थ सेवा करने की भावना अभी भी गयी नहीं है।

सामान्य जनता और डॉक्टरों पर राजयोग के अभ्यास का स्वास्थ्य पर हुआ असर स्पष्ट किया गया। डॉ० हर्बर्ड बेन्स ने सिद्ध किया है कि शिथिलीकरण की प्रक्रिया (Relaxation

Response) द्वारा ही तनाव से मुक्त हो सकते हैं। योग के अभ्यास द्वारा व्यक्ति का मन और शरीर के ऑरगन्स (अंग) होशियार हो जाते हैं। इसके सिवाय जो दूसरे शारीरिक, मानसिक परिवर्तन होते हैं, वे व्यक्ति को स्वस्थ जीवन जीने में बहुत उपयोगी हैं। कुछ राज्यों के हेल्थ डायरेक्टरों ने राजयोग को चिकित्सा क्षेत्र के विद्यार्थियों को उनकी शिक्षा में सिखाने को भी सूचित किया है।

विद्यालय में जाने वाले बालकों की स्वास्थ्य चिकित्सा करने से लगा कि माता-पिता बालकों के शारीरिक स्वास्थ्य का बहुत ख्याल रखते हैं, लेकिन मानसिक स्वास्थ्य के लिए वे इतने ही निश्चिंत हैं। मानसिक रीति से न बढ़ने वाले बालकों का विकास करने के लिए उनके माता-पिता के साथ चर्चा करने के लिए शिक्षकों को कहा, तब उन्होंने कहा कि बार-बार बुलाने पर भी उनके माता-पिता आते नहीं हैं। कुछ माता-पिता यह सत्य स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं कि उनके बच्चे मानसिक रूप से ठीक नहीं हैं। प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय द्वारा आयोजित संपूर्ण भारत में घूमा हुआ यह पहला ही अभियान था जो बहुत सफल रहा। सामान्य जनता और डॉक्टरों में स्वास्थ्य के लिए सच्ची समझ और जाग्रति लाने का यह प्रयास खुद के लक्ष्य तक पहुँच सका। देश के पाँच शहर मैसूर, त्रिवेन्द्रम, भुवनेश्वर, अमृतसर और बम्बई से डॉक्टरों की टुकड़ियाँ छः सप्ताहों तक देश का भ्रमण करके स्वास्थ्य जाग्रति का अभियान चलाया। उसमें एलोपेथी, होमियोपेथी आयुर्वेद और अन्य चिकित्सा पद्धतियों के कुल पचास डॉक्टरों ने भाग लिया था। हर एक टुकड़ी में एक विदेशी डॉक्टर भी शामिल था।

विशाखापट्टनम—सेवाकेन्द्र की ओर से टडेपल्लीगुडम में आयोजित 'आध्यात्मिक प्रदर्शनी का उद्घाटन भ्राता सत्यनारायण जी, चेयरमैन, नगर पालिका टेप काटते हुए कर रहे हैं।

दिल्ली—(विवेकविहार) आध्यात्मिक प्रदर्शनी का उद्घाटन डॉ० नरेन्द्र नाथ, एम०एम०सी० टेप काटकर कर रहे हैं।

तेरी चिंता प्रभु मिटाए

—ब्र०कु० रश्मि, बम्बई (गोरेगांव)

युग विज्ञान का यह कहलाये,
वीडियो, टी०वी० घर-घर आये,
सुख के साधन सभी जुटाये
पर मानव राहत ना पाये।
क्यों?..... इच्छा, ईर्ष्या, तनाव, चिंता
चिंता सबकी नींद फिटाये,
चिता सम यह खून जलाये,
किसी को इसने ना छोड़ा,
शांति से सबका मुख मोड़ा।
जिसके सिर चिंता लग जाये
मस्तक की रेखा तन जाये,
हाय रे तनाव का यह काल,
तन-मन को कर दे बेहाल।
फिकर 'फकीर' बनाये सबको,
दु:ख का ज़हर पिलाये जगको,
रोग है सारे बच्चे इसके,
जकड़े ये मानव को कसके,
काहे को करता फिकरात,
भाई मेरे, तू दिन रात?
तेरी चिंता प्रभु मिटाये
ज्ञान-योग की गोली लाये,
इलाज तू उनसे करवा ले,
जन्मों की चिंता मिटवा ले।

"निश्चय बुद्धि"

ब्र० कु० मीनाक्षी सांभर लेक

कहा भी जाता है "निश्चय बुद्धि विजयन्ति" जहाँ दृढ़ निश्चय है वहाँ जो अकल्याण भी दिखाई देता है, वो कल्याणकारी हो जाता है। जिस प्रकार मीरां ने एक गिरधर गोपाल के भरोसे विष पी लिया, तो वो भी अमृत बन गया! इसी प्रकार जो श्री कृष्ण से भी ऊँच ते ऊँच शिवबाबा हैं, उनके ऊपर जो अपना जीवन बलिहार कर देते हैं उनकी जीवन रूपी नैया कभी भी डूब नहीं सकती।

बाबा ने पवित्र दुनिया स्थापन करने के लिए ब्राह्मण जीवन की मुख्य धारणा 'पवित्रता' बताया है। जिन आत्माओं को बाबा पर पूरा निश्चय है उन आत्माओं पर चाहे कितने भी अत्याचार होते हैं, उन आत्माओं का यही कहना है कि चाहे प्राण भी चले जाएं लेकिन हम अपना जीवन कभी भी अपवित्र नहीं बनने देंगे। तो जो उनको मार भी पड़ती हैं तो मारने वालों के हाथ सूज जाते हैं लेकिन वो आत्मायें "वाह बाबा वाह" करती रहती, जो देखने वाले भी आश्चर्य खाते हैं और एक दिन अत्याचार करने वाले भी बाबा की कमाल देख बाबा के बन जाते हैं। क्योंकि सच के मार्ग में विघ्न तो बहुत आते हैं लेकिन निश्चय के आधार से उनको सहज ही पार कर सकते हैं। जितना-जितना बाबा में निश्चय बढ़ता जाता है उतनी ही हमारी अवस्था एकरस, अचल, अडोल, निर्विघ्न बन जाती है। अब हम देखेंगे कि कैसे निश्चय बुद्धि बनने से हमारी स्थिति एकरस बनती हैं!

एकरस स्थिति

जितना हम बाबा की याद में रहते हैं उतना ही अनेक प्रकार के तूफान भी आते हैं। बाबा तूफानों को पार करने की शक्ति देते जिससे बाबा में स्वतः विश्वास बढ़ता जाता। और जिन को अपना समझते उन्हीं के द्वारा परिस्थिति आती, तो स्वतः ही उनसे बुद्धि हटती जाती और बुद्धि एक बाबा में खो जाती और एक बाबा से ही सर्व संबंधो का रस लेने से आत्मा की स्थिति एकरस हो जाती कि बस 'मैं और मेरा बाबा' इसी स्थिति में आत्मा अचल-अडोल बन जाती।

अचल-अडोल स्थिति

जिस प्रकार अंगद का पांव रावण की कोई भी शक्ति नहीं हिला सकी, इसी प्रकार जिनकी बुद्धि में एक बाबा हैं तो माया चाहे किसी भी रूप में आये लेकिन उनके मन-बुद्धि को आकर्षित नहीं कर सकती हैं। तो इसी प्रकार माया के हर रूप को पहचान अपने मन के अन्दर संकल्प से भी माया के अंश को घुसने न देंगे। वो सदा बाबा के बताए हुए ड्रामा के हर सीन को साक्षी होकर देखेंगे! अपनी बुद्धि को कभी डांवाडोल न होने देंगे।

निर्विघ्न स्थिति

जितना-जितना आत्मा की स्थिति अचल-अडोल होगी उतना ही हर परिस्थिति में शान्ति में रह विघ्नों को सहज ही पार कर लेंगे। निश्चय के आधार से उनकी स्थिति प्रकाश स्वरूप होने कारण सदा हर्षित रह दूसरी आत्माओं को भी निर्विघ्न बना देंगे उनकी खुशी से दूसरी आत्मायें भी स्वयं को हल्का महसूस करेंगी। इस प्रकार स्वयं निर्विघ्न बन दूसरी आत्माओं को भी सहज रीति उड़ती कला का अनुभव करेंगी और करायेंगी। तो इसलिए ब्राह्मण जीवन का मुख्य फाउन्डेशन ही 'निश्चय' है। निश्चय के आधार से ही हमारा जीवन श्रेष्ठ बनता हैं और हम बाबा की समीपता का अनुभव करते हैं। ●

गीत

ले० ब्रह्मा कुमार मोहन (आबू)

मूल वतन में चम-चम चमके
ज्योति बिन्दु शिव प्यारा
सर्व गुणों के भडांर वही शिव
वही है सबका सहारा।

जब हो जग में धर्म ग्लानि
धरती पर शिव आते
कर्म अलौकिक करने लिए
तन साकार हैं पाते
संगम के समय पर चमका
आकर ज्ञान सितारा।

ब्रह्मा के तन में वो चमकी अद्भुत ज्ञान की ज्योति
मिटाये सब दुःख अन्धियारे, लुटाये ज्ञान के मोती
धन्य-धन्य हुआ हर मानव, पाकर अखुट भण्डार।

युगों से सोये मानव ने, किरण सुबह की पाई
सुन कर शिव की अमृत वाणी स्वर्ग दिया दिखाई
खुशियों से नाचे गाये मन, मिला जो प्रीतम प्यारा।

कहाँ तेरी मन्ज़िल, कहाँ है ठिकाना मुसाफ़िर बता दे, कहाँ तुझको जाना ?

प्राय: लोगों को यह कहते हुए सुना जाता है कि यह संसार एक मुसाफ़िर खाना है और आखिर एक दिन तो हम सभी को यहाँ से जाना ही है। परन्तु, हम कहाँ से आए हैं और हमें कहाँ जाना है, इसके बारे में मनुष्य को स्पष्ट रूप से जानना भी तो चाहिए। विचित्र बात है कि आज मनुष्यात्मा अपने उस प्यारे शान्तिधाम को भी भूल चुकी है जहाँ से वह आई है और जहाँ उसे जाना है। आज वह अपनी मंज़िल को भूलकर यहाँ ही के विषय-पदार्थों से मोह-ममता करके फँस गई है और इसलिए उड़कर अपने वतन को नहीं जा सकती !!

इसी तरह, आज मनुष्यात्माएँ मुक्ति अथवा निर्वाण की भी इच्छा तो करती हैं परन्तु यह भी तो जानना चाहिए कि मुक्ति की प्राप्ति होने पर मनुष्यात्मा कहाँ जाती है, वह लोक कैसा है और वहां आत्मा की क्या स्थिति होती है ?

मुक्ति अवस्था में आत्मा कहाँ होती है ?

आप देखेंगे कि विश्व के लगभग सभी धर्मों के अनुयायी यह तो मानते ही हैं कि मुक्ति प्राप्त होने पर मनुष्यात्मा 'ब्रह्मलोक' में जाकर निवास करती है। इसलाम धर्म के अनुयायी उस लोक को '**आलिमे अरवाह**' (रूहों की दुनिया) कहते हैं। ईसाई लोग उसे हाईएस्ट हैवन (Highest heaven) मानते हैं। भारत के आदि सनातन धर्म के लोग उसे ही ब्रह्मलोक, परलोक, परमधाम, शान्तिधाम ब्रह्म-निर्वाण इत्यादि नामों से याद करते हैं। क्योंकि इन नामों में से एक या दूसरे नाम का उल्लेख उपनिषदों तथा गीता इत्यादि में स्पष्ट रूप से मिलता है परन्तु उपनिषद में (छान्दोग्य उपनिषद में) जहाँ यह लिखा है कि 'इन्द्रियों को जीतने वाली, सभी के साथ पूर्ण अहिंसा से व्यवहार करने वाली मनुष्यात्मा 'ब्रह्मलोक' को जाती है,' वहाँ कई लोग, जैसे कि कई आर्य समाजी भाई, उसका अर्थ **ब्रह्म-लोक में जाती है,**" यह न करके यह अर्थ करते हैं कि वह "**ब्रह्म के दर्शन**" करती है। हालाँकि उपनिषद में 'ब्रह्मलोक' शब्द का स्पष्ट प्रयोग है (...ब्रह्मलोकमभिपद्यते... ये छान्दोग्य उपनिषद के शब्द हैं), फिर भी कई लोग '**ब्रह्मलोक**' के अस्तित्व को नहीं मानते और न मानने का कारण केवल यही बतलाते हैं कि यदि 'ब्रह्मलोक' भी कोई लोक होता तो वह दिखाई देता।

वास्तव में ब्रह्मलोक को इसलिए न मानना कि वह दिखाई नहीं देता, भूल करना है क्योंकि इस दलील का आधार लेकर तो कोई कहेगा कि आत्मा और परमात्मा का भी कोई अस्तित्व नहीं है क्योंकि मनुष्य के चर्म-चक्षु तो आत्मा को और परमात्मा को भी नहीं देख सकते। आत्मा और परमात्मा की बात तो अलग रही, मनुष्य के चर्म-चक्षु तो इस स्थूल, प्रकृतिकृत जगत् के भी बहुत से सत्पदार्थों को देखने में समर्थ नहीं है। परन्तु फिर भी उनके अस्तित्व को हम सभी मानते हैं क्योंकि चर्म-चक्षुओं से दिखाई दे सकना ही किसी पदार्थ के अस्तित्व का एकमात्र प्रमाण नहीं है। इसी प्रकार हम आत्मा और परमात्मा इत्यादि के अस्तित्व को मानते हैं यद्यपि उनका दर्शन हम चर्म-चक्षुओं से नहीं कर सकते। उनके अस्तित्व को मानने का एक कारण यह भी है कि उनका साक्षात्कार दिव्य चक्षु से होता है और उनका अनुभव भी दिव्य बुद्धि ही से होता है। ठीक इसी प्रकार, 'ब्रह्मलोक', परलोक, परमधाम, शिवलोक; निर्वाणधाम, आलमे अरवाह या हैवन के अस्तित्व को भी मानना ही होगा क्योंकि न केवल ईश्वरीय वाक्यों से सिद्ध होता है कि इस नाम का एक लोक है जहाँ आत्मा निर्वाण अथवा मुक्ति (liberation) की अवस्था में रहती है बल्कि, इसके अतिरिक्त, परमपिता परमात्मा की कृपा से हममें से अनेकानेक बहिनों तथा भाइयों को जो दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई है उसके आधार पर भी हम कह सकते हैं कि ब्रह्मलोक नाम का लोक है जहाँ पर आत्मा रूपी मुसाफ़िर का जाना होता है। वही सभी आत्माओं का ठिकाना मंज़िल है।

वैसे भी साधारण विवेक की बात है कि यह मनुष्य लोक तो कर्म करने और सुख-दु:ख भोगने के लिए है, यहां तो आत्माएँ शरीर रूपी वेश-भूषा धारण करके खेल अथवा क्रीड़ा करती हैं अथवा इस विराट सृष्टि-लीला में अपना-अपना अभिनय करती हैं। इस सृष्टि को तो लीलाधाम अथवा कर्मक्षेत्र ही कहा गया है। अत: जब आत्मा देह से, कर्मों से तथा सुख-दु:ख से मुक्त है तब भला इस मनुष्य लोक में उसके रहने का प्रयोजन ही क्या है ? तो स्पष्ट है कि मुक्ति की अवस्था में आत्मा निर्वाणधाम (ब्रह्मलोक) में निवास करती है।

ब्रह्मलोक में मनुष्यात्मा की अवस्था

वहाँ आत्मा देह-रहित अवस्था में होती है। वहाँ वह विकर्म-मुक्त, निस्संकल्प और निष्क्रिय होती है क्योंकि उसे कोई कर्म तो करना ही नहीं होता। कई शास्त्रवादी कहते है

कि मुक्ति में आत्मा का चैतन्य गुण भी नहीं रहता। परन्तु वास्तव में आत्मा की चैतन्यता तो रहती है किन्तु उसके चैतन्य की अभिव्यक्ति नहीं होती। अन्य कई कहते हैं कि आत्मा निर्गुण है और लेप तथा विक्षेप से न्यारी है। परन्तु वास्तव में बात यह है कि जब आत्मा ब्रह्मलोक में है तब उसके गुणों की भी 'अभिव्यक्ति' नहीं होती। वास्तव में तो आत्मा के अपने गुण हैं और मन उससे पृथक कोई प्रकृतिकृत सत्ता न होने के कारण लेप-विक्षेप भी आत्मा ही को होता है परन्तु होता तब है जब आत्मा मनुष्यलोक में शरीर धारण करती है। अन्य कई कहते हैं कि विदेह मुक्ति प्राप्त करने के बाद भी आत्मा कर्म करती है और इस मनुष्यलोक के प्राणियों को मार्गप्रदर्शना अथवा सहायता भी दे सकती है परन्तु उसे दु:ख-सुख नहीं होता। वास्तव में ऐसा मानना भूल है। मुक्ति प्राप्त करने पर तो आत्मा बिलकुल कर्म नहीं करती। हाँ, जब वह पुन: इस मनुष्यलोक में आती है, तभी कर्म करती है और अपने धर्म इत्यादि की स्थापना का कार्य कर सकती है। मुक्ति में न कर्मेन्द्रियाँ हैं, न कर्म और न कर्म-फल अर्थात् न सुख, न दु:ख। इन सभी से न्यारी अवस्था है, जिसका कुछ अनुभव इस मनुष्यलोक में भी योगाभ्यास करने से तथा पवित्रता-सम्बन्धी नियमों का पालन करने से हो सकता है।

दृढ़ संकल्प

— ब्र०कु० रामप्रसाद, बैतूल

संगमयुग के पावन पल में, जीवन श्रेष्ठ बनाना है।
पांच विकारों के भूतों को, मन से दूर भगाना है।।
परिवर्तन अपने जीवन में, अब जल्दी ही लाना है।
शिवबाबा से योग लगाकर, राज भाग भी पाना है।।
अमृतवेले उठकर हर दिन, सच्चा योग लगाना है।
दिव्य गुणों को धारण करके, जीवन को सजाना है।।
पुरानी दुनिया और देह को, बुद्धि से भुलाना है।
अपनी तथा और लोगों की, किस्मत को जगाना है।।
ज्ञान रंग से अपने मन को, पक्का रंग चढ़ाना है।
दैवी परिवार की संख्या को, और भी बढ़ाना है।।
स्वर्ग बनाने बाबा आये, यह सबको बतलाना है।
किसी आत्मा को दु:ख न पहुंचे, न किसी को सताना है।।
अज्ञान कि निद्रा में सो रहा, यह सारा जमाना है।
ज्ञान अमृत देकर सबको, फिर से हमें जगाना है।।
पवित्र और योगी जीवन, अब हमको बिताना है।
राजयोग ये सहज है न्यारा, औरों को सिखाना है।।

परमपिता के गीता ज्ञान को, विश्व में फैलाना है।
अवगुण अपने चेक करके, सृष्टि चक्र घुमाना है।।
ज्ञान रत्न भंडारों को, व्यर्थ न लुटाना है।
ज्ञान योग का दीप जलाकर, अंधकार को मिटाना है।।
सात्विक भोजन करें हमेशा, मन को न ललचाना है।
हार न मानें उस माया से, माया को ही हराना है।।
उस बाबा के मीठे-मीठे, बच्चे भी बन जाना है।
जन्म-सिद्ध अधिकार हमारा, हमको भी पाना है।।
याद में ही शिवबाबा के, खाना भी पकाना है।
भोग लगाकर उस बाबा को, फिर हमको खाना है।।
कितनी भी छोटी गलती हो, बाबा से न छुपाना है।
योग युक्त हो बुद्धि द्वारा, समय न व्यर्थ गंवाना है।।
इच्छा हो जब गाने की, बाबा के गीत ही गाना है।
अंधों की हमें लाठी बनकर, सच्ची राह दिखाना है।।
रूह गुलाब बनकर बाबा की, बगिया को महकाना है।
शिवबाबा के बच्चे बनकर, दाग न कोई लगाना है।।

पृष्ठ १४ का शेष

जगतमाता (पिता) की वृत्ति एवं स्थिति

रूप में अपने आपको मोल्ड करना आसान है– जैसे गर्म-गर्म सोना विविध रूप के गहने (Ornaments) बन सकता है, ऐसे आत्मिक स्थितिधारण करने से विविध रूप धारण करना सहज हो जाता है। विविध रूप धारण करने से सहज और तुरंत हम औरों के अपने बन जाते हैं। यह अपनापन सब दीवारों और भेदों को तोड़ता है। जैसे आदि पिता ब्रह्माबाबा सबको अपने लगते हैं, ऐसे हम आदि पत्ते मास्टर जगतमाता (पिता) के रूप में सबको स्नेह देकर उन्हें देवता बना सकेंगे।

इसी प्रकार से विविध संबंधों की वृत्ति रूपी स्थिति में स्थित होकर व्यवहार करेंगे तो ऐसी वृत्ति का बल, उस संबंध और स्वरूप का बल मिलेगा। उसी कारण हमें सर्व संबंधों का स्वरूप, उसी प्रकार की वृत्ति तथा स्थिति धारण करने का अनुभव करना पड़ेगा। विभिन्न नाम रूप के अंदर जितना अपने आपको परिवर्तन करेंगे उतना वह रूप और वृत्ति मददगार बनेगी और सामने वाले व्यक्ति को परमात्मा के नाम, रूप, गुण या शक्ति का अनुभव सहज करा सकेंगे। बहुरूपी बन बहुरूपी परमात्मा की अनुभूति कराना आसान रहेगा, यह मेरा अनुभव है।

मन्मनाभव ही क्यों ?

तन-मना-भव या धन-मना-भव क्यों नहीं ?

ब्र० कु० मुरारी लाल त्यागी, दिल्ली (त्रिनगर)

मन्मनाभव···· गीता का महामन्त्र है यह···· और हमारे बाबा ने वाणी में भी मन्मनाभव को अत्यन्त महत्व दिया है। जब सेवा का सवाल उठता है तो तन, मन, धन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, लेकिन जब याद की बात आती है तो केवल मन्मनाभव का प्रयोग होता है। आइए, हम विचार करें कि मन्मनाभव को इतना महत्व क्यों दिया गया है?

किसी भी गति की तुलना हम अश्व-शक्ति अर्थात् हॉर्स-पावर से करते हैं। जो जितना गतिवान होगा, शक्तिशाली होगा उसकी उतनी ही अश्व-शक्ति से तुलना की जाती है। एक से लेकर हजार तक, ये अश्व शक्तियाँ मानव के नियंत्रण की सीमा में आती हैं या यूँ कहना चाहिए कि इस पर कंट्रोल किया जा सकता है, परन्तु मन पर नहीं।

संसार में प्रकाश-किरणों की गति को तीव्रतम माना जाता है। सूर्य उदय होता है तो कुछ ही क्षणों में हजारों मील तक अंधकार को चीरता चला जाता है। दूसरे नम्बर की गति बिजली की है। बटन दबाते ही दूर-दूर तक बत्तियाँ जलती चली जाती हैं। किन्तु, मन की गति इन सब से तीव्रतम है।

जब हम परमपिता परमात्मा को याद करते हैं, तो देखने में आता है और अनुभव करते हैं कि मन क्षण-भर में परमधाम पहुँच जाता है। वह अपने स्टेशनों (ब्रह्मा, विष्णु, शंकर पुरियां) पर रुकता हुआ भी जाए तो भी उसको परमधाम पहुँचने में क्षण भी नहीं लगता। मन पलक झपकते ही परमधाम, शान्तिधाम, निर्वाणधाम जो भी कहें, वहां पहुँच जाता है। किन्तु, बाबा के बताए ठिकाने पर मन कितना टिकता है? यह भी विचित्र बात है कि मन को एक स्थान पर टिकाए रखने के लिए भी रस्सा-कशी होती रहती है।

प्रातः जब योग में बैठते हैं तो माताओं का मन बच्चों तथा अन्य घर वालों की तैयारी में जुटा रहता है। भाँई भटकते हैं कि अभी दफ्तर जाना है। किसी को गाड़ी का ख्याल आता है। युवकों को अपनी मित्र मण्डली याद आने लगती है···· मन इन्हीं उलझनों में ताना-बाना बुनता रहता है लेकिन बाबा को याद करने में उसे मेहनत लगती है। मेरा मन, तेरा मन, उसका मन···· मन बड़ा ही चंचल है। इसलिए गीता में भी और बाबा ने भी कहा है कि इसको ज्ञान-योग की मजबूत रस्सी से शिवबाबा के खूँटे से कसकर बाँध दो, तभी यह काबू में आएगा। हम देखते हैं कि मदारी बन्दर को खूँटे से बाँध देता है लेकिन बन्दर फिर भी चैन से नहीं बैठता। अपने आप को आज़ाद कराने के लिए इधर से उधर उछलता ही रहेगा।

दिन-भर में हम सैकड़ों लोगों से मिलते हैं। उसमें कुछ प्रभावित करने वाली भी आत्माएँ होती हैं और कुछ परेशान करने वाली भी। जब मन उनकी परेशानी में उलझे तो फौरन 'शान' की ब्रेक लगा दो। जब आप निरर्थक, बेमतलब और गई-बीती बात सुनते हैं तो तत्काल मन्मनाभव के मन्त्र को ध्यान में लाओ। हमारे सारे दिन के क्रिया-कलाप···· हमारे मन रूपी कैमरे में उतरते जाते हैं और जब हम मन को बाबा के खूँटे से बाँधने की चेष्टा करते हैं तो वह बन्दर की तरह उछलने लगता है अर्थात् अन्य दुनियावी बातों में भटकता रहता है। इसलिए, उसे नियन्त्रण में रखने के लिए बाबा ने उपाय भी बताया है — न व्यर्थ बोलो, न व्यर्थ सुनो, न व्यर्थ देखो, न व्यर्थ सोचो। जितना व्यर्थ से दूर होते जाएँगे, उतना ही समर्थ होते जाएँगे। इसलिए हमें चाहिए कि समर्थ एवं शक्तिशाली बनने के लिए व्यर्थ वार्तालाप, व्यर्थ मिलाप और व्यर्थ के विचारों एवं संगत से किनारा कर लें।

बाबा बताते हैं कि स्नेह का सम्बन्ध मन से है। कोई मन लगा कर अध्ययन करे तो सफलता मिलती है। कोई मन से किसी को स्नेह दे तो वह आत्मा मन से फिदा हो जाती है। मन से किसी को चाहो तो उससे कठिन से कठिन कार्य कराया जा सकता है।

मन ही है जो इस मृत्युलोक में भटकता है, विनाशी दैहिक-सम्बन्धों के मोह-जाल में फँसता है। इसलिए, बाबा ने कहा है — मन-मना-भव···· अर्थात् मन मुझ में लगाओ, मन से मेरे हो जाओ। बाबा ने कभी नहीं कहा कि तन-मना-भव या धन-मना-भव। हाँ यह बात जरूर है कि — **"जहाँ हमारा मन होगा, वहीं हमारा धन होगा"**। फिर बाबा को क्या जरूरत पड़ी है, कि वह धन और तन की बात कहे, वे मूल मन्त्र को ही बताते हैं कि मनमनाभव। आप यहीं बैठे हैं, आपका बेटा-बेटी, भाई, मित्र-सम्बन्धी विदेश में हैं तो भी उनकी याद स्वतः ही आती रहती है और यदि आपने उनके रहने का स्थान भी देखा होगा तो आपका मन वहीं चक्कर काटता रहेगा। पलक झपकते मन वहाँ चला जाता है। पलभर में यहाँ और पलभर में वहाँ। बाबा को परमधाम

(शेष पृष्ठ २८ पर)

दोष-दृष्टि से मुक्ति की युक्ति
गुण-ग्राहक बनो

ब्र० कु० सोमी, खण्डवा

गुण-ग्राहकता का भावार्थ है—गुणों का ग्राहक बनना। मनुष्य जब बाज़ार जाता है तो उसके सामने दुकानों में कई चीज़ें रखी होती हैं और अनेक प्रकार के लोग भिन्न-भिन्न चीज़ें खरीद रहे होते हैं। हरेक दुकान के शोकेस में अथवा बाहर टोकरे में माल भरा रखा होता है। कोई ऊँची चीज का खरीददार होता है जो कि अधिक दाम देकर भी उच्च कोटि की चीज खरीदता है और यदि ऊँची न हो, उसके ढंग का माल न हो तो वह खाली भले ही लौट आये परन्तु खराब माल नहीं लेता। परन्तु कई दूसरे भी लोग होते हैं जो कि सस्ती या बनावटी चीज के खरीददार होते हैं। अतः अब हमको पहले तो यह देखना है कि हम किसके और किस क्वालिटी के माल के खरीददार हैं?

इस दुनिया रूपी बाजार में सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी संस्कार अर्थात् तीनों क्वालिटी के संस्कार मिलते हैं। हम किस चीज के ग्राहक हैं? यदि हम सही अर्थ में 'गुण-ग्राहक' हैं तो हम इस दुनिया रूपी बाजार में गुण ही लेंगे। यदि हम उत्तम क्वालिटी के अथवा सतोप्रधान संस्कार (गुण) चाहते हैं तो उसके लिये हमें कितना भी पुरुषार्थ रूपी दाम देना पड़े, हम उसे ही खरीदेंगे अथवा अपनायेंगे और जो चीज़ अपने मतलब की नहीं है,उसे छोड़ देंगे। जैसे कि खाद कितनी गन्दी होती है! परन्तु फूल उसमें से भी गुण लेकर सुगन्धि देता है। इसके विपरीत मक्खी और मच्छर उसी खाद में से दुर्गुण लेते हैं। इसी प्रकार गुण-ग्राहक व्यक्ति किसी तुच्छ व्यक्ति से भी गुण लेता है जबकि अवगुण-ग्राहक व्यक्ति दुर्गुण लेकर बुराई फैलाता है।

अवगुण ग्रहण करने वाला मनुष्य स्वयं तो रूठता है ही परन्तु वह जहाँ भी जाता है गन्दगी अवश्य फैलाता है। इस प्रकार लोगों के मन को एक दूसरे के प्रति खराब करता है।

ज्ञानवान मनुष्य यह तो जानता ही है कि कलियुग का अन्त है और सभी मनुष्यों में अवगुण तो भरे हुये हैं ही। परन्तु फिर भी किसी न किसी दिव्यगुण अथवा सद्‌गुण की थोड़ी बहुत रेखा हरेक में रह गई है क्योंकि यदि पूरी रीति से गुणों का अन्त हो जाता तब तो परमात्मा के अवतरण का भी कोई लाभ न होता क्योंकि उसका कर्त्तव्य भी यही है कि जो दबे हुये (Merged) प्रायः लोप हुये दिव्य गुण हैं, उन्हें वह जागृत करता है, स्मृति दिलाता है और उनका विकास करने का ज्ञान देता है। अतः गुण-ग्राहक बनने के लिये हमें इस बात का ख्याल हमेशा रखना चाहिये—यूं तो आज कलियुग में हर एक मनुष्य में बहुत ही अवगुण भरे हुये हैं परन्तु हर एक में कुछ न कुछ गुण तथा अच्छाई भी अवश्य रही है। अब मुझे किसी के अवगुणों को न देखना है, न सुनना है और न उनका वर्णन करना है, न ही उन्हें मन में धारण करना है। ऐसी धारणा से ही मनुष्य में गुण ग्राहकता का दृष्टिकोण अथवा गुण आएगा।

गुण-ग्राहक वृत्ति को धारण करने में और भी कई बातें सहायक हैं। पहली बात तो यह कि मैं ईश्वर की सन्तान हूँ। जैसे राजकुल के किसी बालक को यह याद रहने से उसका इस बात पर ध्यान रहता है कि मुझे राजकुलोचित संस्कार अथवा आदतें धारण करनी हैं, वैसे ही प्रातः उठते ही चारपाई से उतरने और धरती पर पांव रखने से भी पहले हमें यह स्मृति ताजा करनी चाहिये कि 'मैं ईश्वर की सन्तान हूँ।' तो मुझे भी ज्ञान-मूर्ति,दिव्य गुण मूर्ति और प्रेम-मूर्ति बनना है।

फिर मनुष्य को यह भी याद रखना चाहिये कि मेरा लक्ष्य श्री-लक्ष्मी और श्री-नारायण के समान 16 कला सम्पूर्ण बनना है। जितने गुण मैं धारण करूँगा, उतना ही लक्ष्य के निकट आऊँगा। अतः जैसे कोई मनुष्य दर्पण में चेहरा देखता है कि बाल ठीक बने हुये हैं, सुरमा ठीक है और चेहरा साफ है, आदि-आदि। वैसे ही हमें अपने मन रूपी दर्पण में प्रतिदिन ज्ञान स्नान करने के बाद सारे दिन के कार्य के लिये तैयार होने के पहले, जाँच कर लेना चाहिये कि जो-जो मुख्य दैवी गुण हैं, वह मैंने ठीक धारण किये हुये हैं? फिर दिनभर में भी जैसे कोई फैशनेबुल व्यक्ति जेब में से छोटा-सा आईना (दर्पण) निकाल कर देखता रहता है अथवा चेक करता रहता है कि कहीं बाल बिगड़ तो नहीं गये, चेहरा साफ तो है? वैसे हम भी तो श्री-लक्ष्मी और श्री-नारायण की तरह फैशनेबुल अर्थात् 'बने-संवरे' हुये बन रहे हैं। अतः हमें भी दिनभर में कई बार चैक करना चाहिये कि क्या हममें सब गुण ठीक धारण हुये हैं, माया रूपी तूफान लगने से बिगड़ तो नहीं गये? यदि बिगड़ गये हों तो ज्ञान रूपी जल से तथा लक्ष्य रूपी साबुन से आत्मा के चेहरे को फिर साफ कर लेना चाहिये। दिव्यगुणों पर ध्यान (Attention) रूपी कंघी फेर कर उन्हें संवार लेना चाहिये।

इस प्रकार ईश्वरीय कुल तथा दैवी कुल की स्मृति के अतिरिक्त ब्राह्मण कुल को भी याद रखना है। इन सब बातों की स्मृति रहेगी तो निश्चय ही हममें दिव्य गुणों की धारणा होती जायेगी और दोष-दृष्टि निर्दोष बनती जायेगी। ■

सफलता हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है

ब्र० कु० आत्मप्रकाश, आबू पर्वत

इतिहास में कुछ महान् विभूतियाँ तो सफलता के सर्वोच्च शिखर तक पहुँच गई, तो किसी को असफलता का मुँह भी देखना पड़ा। आज भी प्रत्येक व्यक्ति सफलता का इच्छुक होते हुए भी जीवन में आने वाली अनेक समस्याओं तथा विपत्तियों के कारण किसी कार्य में सफलता, तो किसी में असफलता प्राप्त करता रहता है। इसलिए सदा सफलतामूर्त्त बनने के लिए हमें सफलता का रहस्य समझना नितान्त आवश्यक है। तो यहाँ प्रस्तुत है—पुनीत और विपिन की पारस्परिक ज्ञान-चर्चा।

आज पुनीत निराश होकर अपने कमरे में बैठा हुआ है। उदासीनता के तथा खिन्नता के भाव चेहरे पर स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। इतने में उसका मित्र विपिन कमरे में प्रवेश करता है।

विपिन—अरे, पुनीत! क्या हुआ, क्यों इतने निरुत्साहित होकर बैठे हो, किस गहरे सोच में डूबे हो?

पुनीत—(खिन्नता से)-- कुछ नहीं, विपिन भैया, मैं तो ऐसे ही बैठा था।

विपिन—(आग्रह पूर्वक)—पुनीत, छिपाओ नहीं, तुम्हारा चेहरा ही बता रहा है कि जरूर कोई बात है।

पुनीत—विपिन भैया, न जाने क्यों, आज स्कूल तथा कालेज में आपके साथ बिताए सुख-चैन के दिन याद आ रहे थे। चंद मिनटों के बाद ही अचानक दु:ख की लहर मन पर छा गई।

विपिन—दु:ख की लहर का आखिर कारण क्या है?

पुनीत—(उदासीनता से)—भैया, क्या बताऊँ, कालेज की पढ़ाई के बाद सर्विस (नौकरी) ढूंढने के लिए न जाने कितने धक्के खाने पड़े। जहाँ पर भी मैं जाता था, असफल होकर वापस आता था। आखिर पिताजी के कहने पर छोटा-सा व्यापार चालू किया। लेकिन उसमें भी तकदीर ने साथ नहीं दिया। पता नहीं, असफलता मेरा पीछा क्यों नहीं छोड़ती।

विपिन—पुनीत, संसार परिवर्तनशील है। सदा ही हमें असफलता प्राप्त होती रहे, यह नहीं हो सकता।

पुनीत—(दु:खभरे स्वर में)—क्या बताऊँ भैया? दिन-प्रति-दिन महँगाई बढ़ती जा रही है, बच्चों की मांगे बढ़ती जा रही हैं। आये दिन तुम्हारी भाभी ताने मारती रहती है। घर में छोटी-सी चीज की कमी पड़ती है तो वह बादल की तरह मुझ पर गरजती है। मेरा दिल तो अभी कहीं नहीं लगता। सचमुच ये संसार तो समस्याओं का सागर है, इस दु:खद सागर में सफलता रूपी हीरे-मोती प्राप्त करना बहुत कठिन है।

विपिन—पुनीत, ये आंखों में आंसू क्यों आए, क्या इतना कोमल दिल है तुम्हारा? कोमल दिलवाला कभी भी जीवन में कमाल नहीं कर सकता। **समस्याओं से घबराओ मत, डट कर सामना करो।**

पुनीत—भैया, मेरी समझ में नहीं आता कि भगवान् मुझ पर क्यों अन्याय कर रहा है? मैं देखता हूँ कि कइयों को बिना मेहनत सफलता ही सफलता प्राप्त होती रहती है, ऐसा क्यों?

विपिन—पुनीत, भगवान् कभी किसी पर अन्याय नहीं करता, वो तो दया का सागर है। ये हार-जीत तो अपने ही कर्मों से प्राप्त होती है। इसलिए हिम्मत नहीं हारो, हिम्मत से ही अपने पथ में आने वाली बाधाओं को ठोकर मारकर अपना रास्ता बनाया जाता है। ऐसे हिम्मतवान ही निरन्तर उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होते हैं। किसी ने ठीक ही कहा है— **ऐ दिल, तुझे कसम है—हिम्मत न हारना**"

पुनीत—भैया, हिम्मत तो हारनी नहीं चाहिए, लेकिन कभी-कभी ऐसी जटिल परिस्थिति सामने आती है जो हिम्मत हार ही जाते हैं। ऐसा क्यों होता है?

विपिन—पुनीत, हिम्मत हम तब हारते हैं, जब किसी न किसी प्रकार का संशय हमारी बुद्धि में आता है।

पुनीत—संशय कौनसी बातों पर आता है?

विपिन—संशय कभी तो हमें स्वयं पर, भगवान् पर या अपने पार्ट पर किसी परिस्थिति के कारण आ जाता है। जैसे—पता नहीं मैं ये कार्य कर सकूंगा या नहीं, पता नहीं भगवान् ने ऐसा क्यों किया या पता नहीं इस बेहद नाटक में मेरा पार्ट ऐसा क्यों है आदि। ये 'पता नहीं' जैसे संशय भरे संकल्प ही हमें हिम्मतहीन बनाते हैं।

पुनीत—विपिन भैया, हमें संशय बुद्धि कौन बनाता है?

विपिन—पुनीत, माया इस संशय रूपी कीड़े को जन्म देकर आत्मा को पीड़ित करके अनेक रोगों का शिकार बनाती है। इसी प्रकार माया हमें कमज़ोर बनाकर स्वतंत्रता छीन लेती है।

पुनीत – भैया, माया तो सचमुच बहुत बेरहम है।

विपिन – इसमें सन्देह नहीं है, पुनीत। वास्तव में हमारे अन्दर असीम शक्तियाँ हैं, मायाजीत बनने का सामर्थ्य अपने में ही है। लेकिन किसी न किसी प्रकार से संशयबुद्धि बनाकर हमें नीचे गिराने पर माया तुली रहती है। इसके विपरीत ऊँच से ऊँच परमात्मा हमें निश्चय बुद्धि बना कर ऊँचा उठाते हैं। वैसे '**सफलता तो हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है**'

पुनीत – (उत्सुकता से) – वो कैसे भैया?

विपिन – पुनीत, हम सभी परमात्मा के बच्चे तो हैं ही फिर भी जन्मते ही अर्थात् परमात्मा बाप पर निश्चय करते ही हमें उनकी सर्वशक्तियाँ अधिकार रूप में अर्थात् वर्से के रूप में मिलती हैं जिससे निश्चित ही हमें हर कार्य में सफलता मिलती है। सर्वशक्तिवान परमात्मा के बच्चे माया से हार खाएं – ये भला कैसे हो सकता है? **दृढ़ निश्चय की परछाई है सफलता**

पुनीत – इससे सिद्ध होता है कि सफलता पाने के लिए दृढ़-निश्चयी बनना परमावश्यक है।

विपिन – हाँ, क्योंकि संकल्प है बीज और कर्म है उस बीज से उत्पन्न हुआ वृक्ष। तो जब हमारा दृढ़ संकल्प अर्थात् शक्तिशाली संकल्प होता है तो स्वत: ही कर्म भी शक्तिशाली होता है जिससे सफलता निश्चित प्राप्त होती है।

पुनीत – भैया, अब मैं भली-भाँति समझ गया कि दृढ़-निश्चय सफलता का आधार है। भैया, इसके अलावा और कोई बात जो सफलता पाने में मदद कर सके?

विपिन – हाँ, सदा ध्यान में रखें कि जब भी हमें कोई कार्य करने का संकल्प उठता है, उसी समय कार्य को आरंभ करें।

पुनीत – अगर उसी समय आरंभ न किया तो क्या होगा?

विपिन – कार्य को हम जब तक आरंभ नहीं करते हैं, तब तक हमारे मन में कई संकल्प कार्य के सम्बन्ध में चलते रहते हैं जिससे हमारी सूक्ष्म शक्तियों का ह्रास होता है। फलत: धीरे-धीरे संकल्पों में कमजोरी आने लगती है जिससे हमें उतनी सफलता नहीं मिलती जितनी हम चाहते हैं।

पुनीत – इसका मतलब शुभ कार्य के लिए कभी भी देर न करें।

विपिन – हाँ, जैसे – जब लोहा गर्म होता है तो उसी समय तुरन्त तोड़ने से वह जल्दी टूट जाता है या जिस तरह उसे मोड़ना चाहें, मोड़ सकते हैं। अगर थोड़ा भी विलंब होता है तो ठंडा होने के कारण तोड़ने के या मोड़ने के लिए समय भी ज्यादा लगेगा और शक्ति भी ज्यादा खर्च होगी।

पुनीत – ठीक है भैया, इस बात को मैं जीवन में जरूर अपनाऊंगा। लेकिन कभी किसी कार्य में असफलता मिलती है तो मनोबल गिर जाता है। उस समय क्या करें?

विपिन – पुनीत, मनोबल गिर जाना अर्थात् मन पर निराशा रूपी घोर अंधकार छा जाना। इसलिए किसी भी कीमत पर हमें अपने मनोबल को गिरने नहीं देना चाहिए। क्या एक बार असफलता मिलने के बाद दूसरे समय सफलता नहीं मिल सकती? असफलता की ठोकरें हँसते-हँसते सहने वाला ही असली इन्सान कहलाता है।

पुनीत – भैया, तो क्या असफलता मिलने के बाद उस कार्य को न छोड़ें?

विपिन – हार मानकर कार्य को छोड़ देना तो कायरता है, वीरता नहीं। वास्तव में एक बार की असफलता से उत्तेजित होकर हमें अपनी आन्तरिक शक्तियों का आह्वान करना चाहिए। दृढ़-निश्चय को बार-बार दोहरा कर, पक्का करके, अथक परिश्रम करते रहने से ही भविष्य में हम अपने व्यक्तित्व की असफलता के कलंक से रक्षा कर सकते हैं।

पुनीत – विपिन भैया, आपके ये शक्तिशाली बोल संजीवनी बूटी के समान मुझे मूर्छित से सुरजीत कर रहे हैं।

विपिन – पुनीत, नेपोलियन से किसी ने पूछा था कि आपकी सफलता का रहस्य क्या है? तो जवाब मिला था – 'निरन्तर श्रम'। उसके इस शक्तिशाली संकल्प ने ही उसे विश्व-विजेता के पथ पर अग्रसर किया।

पुनीत – भैया, मैंने भी आज प्रण कर लिया कि मैं भी निरन्तर श्रम करता रहूँगा, चाहे मुझे कठोर संघर्ष भी क्यों न करना पड़े।

विपिन – बहुत खुशी की बात है पुनीत। हाँ एक बात और है – किसी भी कार्य में सफलता पाने के लिए किसी की सहायता की प्रतीक्षा न करें। आत्मनिर्भरता का सहारा लेकर कठोर परिश्रम करते रहें तो सफलता अवश्य मिल ही जाती है।

पुनीत – भैया, कभी किसी लाचार परिस्थिति में किसी के सहारे की आश रखना, क्या उचित नहीं है?

विपिन – नहीं, कभी भी किसी का सहारा पाने का मोहताज न बनें। इस संसार में कोई किसी का नहीं है। आपत्ति आने पर सभी किनारा कर लेते हैं और हम स्वयं को अकेले ही पाते हैं। सिवाय परमात्मा के किसी के सहारे की आश रखना, स्वयं को भ्रम में डालना है। ऐसी आश रखनेवालों का भविष्य जरूर अंधकारमय है।

पुनीत – लेकिन भैया, अभी तक हम तो इतने शक्तिशाली नहीं बने, इसलिए····

विपिन – पुनीत, कठिन परिस्थितियाँ आने पर आत्मनिर्भरता से कठिन परिश्रम करते रहने से आत्मा की सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत हो जाती है। केवल हम इतना ही निश्चय कर लें कि यदि जीना है तो अपने ही भरोसे जीना है,

(शेष पृष्ठ २८ पर)

"प्रभु मिलन की शेष घड़ियाँ"

—ब्र० कु० सूरजमुखी, रुद्रपुर—

ब्राह्मणों का यह छोटा-सा संसार जिसे स्वयं परमात्मा ने ब्रह्मा के कर कमलों के द्वारा बसाया है, आज इतनी उन्नति के शिखर पर पहुँच गया है कि विनाश के कगार पर खड़े लोगों को विश्वास भले ही न हो कि यही हैं विश्व परिवर्तक। उन्हें हमारे प्रभु मिलन में कितनी भी शंकाएं क्यों न हों, लेकिन, ब्राह्मणों का एक विशाल संगठन, पवित्रता, स्नेह-सम्पन्न, सुख-शान्ति का स्रोत, मर्यादाओं के स्तम्भ पर टिका हमारा अलौकिक जीवन आज सबकी नज़रों में आ चुका है।

प्रभु-मिलन के इस लम्बे काल में हमने हर तरह की अनुभूतियाँ की होंगी। बीता हुआ समय वापस तो आयेगा नहीं। जिन आत्माओं ने इस सुनहरे काल को भगवान् की मर्ज़ी से गुज़ारा होगा, जिन्होंने दिल से प्रभु की हर श्रीमत का सत्कार किया होगा। जिन्होंने दिल से अपने को योग्य बनाने की मेहनत की होगी, वे इन अन्तिम घड़ियों में प्रफ्फुलित होंगे। उन्हें अपने भाग्य का श्रेष्ठ नशा होगा।

बाबा ने बच्चों को वह हर राज़ बताया जो भविष्य सतयुगी राजधानी में भावी राजकुमारों को ज्ञात होना चाहिये। कितनी सुखद शिक्षाएं हैं बाबा की जिन्होंने सिर्फ कहा—"**बच्चे, श्रीमत ही तुम्हें श्रेष्ठ बनायेगी। तुम सदैव श्रीमत पर चलते रहो तो मैं तुम्हारी गॉरन्टी ले लूंगा।**" कितना सस्ता सौदा किया हमसे! भोलानाथ के भोलेपन का कई फिर नाजायज फायदा भी उठाने लगे। बाबा बच्चों को याद दिलाते भी रहते हैं—'मैंने तुम्हें कर्मों की इतनी गहन गति समझाई है, ड्रामा का हर राज़ समझाया, तुम्हें कितना समझदार बनाया है···' क्या ये भोलापन ही है? नहीं, बच्चों के प्रति उपकार है, श्रेष्ठ भावनाएं हैं, महान् आशाएं हैं···। हाँ, हमने बाबा के दिव्य कर्त्तव्यों का रूप अवश्य ही बाप के भोलेपन में देखा होगा परन्तु शिक्षक की शिक्षाएं तो रोंगटे खड़े करने वाली हैं···।

बाबा की दी गई शिक्षाएं ही हमारी महानताओं का दर्पण हैं। परन्तु आवश्यकता है हमारे चल रहे विशाल अभियान में हम अपनी शेष घड़ियों को किस प्रकार बितायें··· ये अन्तिम घड़ियाँ बड़ी ही विचित्र होंगी··· महाभारत काल में कहीं भी द्वन्द छिड़ सकता है, किसी भी द्रौपदी पर हमला हो सकता है, किसी भी अर्जुन को ममत्व आ सकता है···। तो सावधानी का समय है। ये समय समीपता के अनुभव का है। जैसा कि कुछ विशेष आत्माओं का ये पुरुषार्थ भी होगा। जो आदि से लेकर अन्त तक इस प्रभुमिलन के सुखद समय को श्रीमत पर चलकर बिता गये··· उनका मन सन्तुष्ट होगा।

हम यहाँ अब कुछ ऐसी अनुभूतियाँ प्रस्तुत करेंगे जो हमारे वर्तमान पुरुषार्थ को तीव्र रफ्तार दें। उसके लिये पहला- पहला पुरुषार्थ है—**समय की पूरी-पूरी पहचान।** वास्तव में समय की बलिहारी है··· समय की कदर हमें आगे बढ़ना सिखाती है। उदाहरण के तौर पर हम दिनभर सेवा करें, मुरली पढ़ें व सुनें या दूसरों को ज्ञान सुनाते रहें लेकिन हम खुद अमृतवेले न उठते हों या उस समय को अपनी नींद का अच्छा समय समझते हों, विशेष आराम उसी समय मिलता हो, तो भी तो बाबा से मिलन का काल अलबेलेपन में बीत जाता है। हमें चाहिये—समय की पूरी-पूरी कदर करें।

दूसरी बात—बाबा को जिन्होंने देखा है, वे जानते हैं—बाबा के अन्तिम दिन कितने उपराम अवस्था के थे! उन दिनों बाबा ने विशेष तपस्या की। अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को इस यज्ञ की कारोबार में समर्पित कर दिया था। उनका न्यारा-प्यारापन उनकी महानताओं व प्रभु मिलन की गहन अनुभूतियों का साक्षात्कार कराता था···। ये अन्तिम थोड़े दिन कहीं अटक जाने व लटक जाने वाले नहीं हैं, बल्कि भटके हुए आये थे, यहाँ आकर भी लटक गये तो हमारी इस बुद्धिमानी पर लोग जरूर हंसेंगे।

तीसरी बात—सावधानी चाहिये। अब ऐसी विपरीत परिस्थितियाँ विश्व के सामने आयेंगी जिनका असर हर सामाजिक प्राणी पर होगा ही। ऐसी भौगोलिक परिस्थितियाँ भी होंगी जो हमारी आवश्यकताओं का दमन होगा। इतनी भयावह स्थिति होगी मानव-मात्र की जिन्हें देख पाना साधारण मानव के बस की बात नहीं होगी। गिरावट की ओर हमारे कदम न चल पड़ें—ये सम्भाल चाहिये क्योंकि इन तूफानों में छोटे-मोटे पौधे तो बच भी सकते हैं पर बड़े-बड़े पेड़ अवश्य ही इनकी चोट को सहन करेंगे। ये तूफान अन्तिम चेतावनी होंगे स्थिति को मजबूत बनाने के लिए।

ये तो सभी को यहाँ निश्चय है ही कि ये कार्य तो भगवान् का है, यज्ञ भगवान् ने रचा है···। भगवान् पढ़ाता है—ये निश्चय भी पक्का है क्योंकि उसकी पढ़ाई प्रत्यक्ष है। परन्तु पढ़ाई पर पूरा ध्यान, अन्तिम समय तक की रूहानी विद्यार्थी जीवन(Godly Student Life) का पूरा रिकार्ड सर्वश्रेष्ठ हो।

हमारा बेहद का वैराग्य, अनासक्त वृत्ति, हमारी सहनशील अवस्था इस महान् कार्य को और ही सहयोग दे सकती है। ये सहयोग ईश्वरीय सहयोग दिलाने का साधन है। बाबा में ये गुण विशेष थे। हम भी उनकी औलाद हैं। उनके कदमों पर चलकर हम मेहनत से बच सकते हैं और इन सुनहरी''' अन्तिम घड़ियों में भरपूर आनन्द ले सकते हैं।

हम जानते हैं, हमारे जीवन का पल-पल बड़ा अमूल्य है। हमने बाबा से अनेक प्रतिज्ञाएं भी की होंगी। हमें उन्हें पूरा भी करना है और उनके दिये गये अपार स्नेह का बदला (Return) भी देना है। बस, हमारा ये सुनहरा समय सोचते-सोचते ही न बीत जाये, दूसरों को देखते-देखते ही न बीत जाये। वो भी उन्हें जो अभी खुद भी पर्दे के पीछे है।

ये अन्तिम घड़ियाँ प्रभु मिलन की'''

अन्तिम घड़ियाँ''' जी-जान की बाजी है। बाप समान बनने की इन सुन्दर घड़ियों को समान बनने की धुन में बितायें''' ये मिलन सदाकाल की प्राप्ती का है। इसे''' विशेष बाप की शुभकामनाएं ही समझें''' कोई भी कारण हमें विचलित न कर पाये''' कोई बाधा हमारे मार्ग का रोड़ा न बन जाये—**कोई तूफान हमारे दीप न बुझा दे, जिन्हें आशाओं का घृत डलकर बाबा ने पिछले ५१ वर्षों से जलाया हुआ है।**

हमारे सुख के दिन आ रहे हैं''' हमारा स्वराज्य आ रहा है'''। परन्तु ये दिन, ये पल, ये क्षण, ये घड़ियाँ कब आयेंगी? पुन: ५००० वर्ष बाद। लेकिन जो सुख अब न ले पाये, फिर भी नहीं ले सकेंगे—ये भी कटु सत्य है।

आओ, हम सब मिलकर इन अन्तिम घड़ियों को बाबा की आशाओं को पूर्ण करने की खुशी में बितायें। कुछ दृढ़ प्रतिज्ञाएं अपने आप से कर लें कि हम अन्तिम क्षण तक ईश्वरीय सेवाओं में अपना सहयोग देते रहेंगे''' ये ईश्वरीय आनन्द''' ये अनुपम सुख आपने जो हमें दिये, हम भी आपके सब बच्चों को देकर उन्हें भी आपके प्यार का पात्र बनायेंगे।

प्रभुमिलन के सुन्दर अनुभवी आत्माओं को चाहिये कि उनका सब कुछ इस यज्ञ में सफल हो। उनके श्वास भी निष्फल न जायें''' तब हम अपने अटल विश्वास की बुनियाद पर यह कह सकते हैं कि हमारी ये प्रभु मिलन की घड़ियाँ सफल हो रही हैं''' परन्तु हमारी सफलता हमारे अन्तिम पुरुषार्थ में बाधक न हो। अत: इन सफलताओं का भोग भी हम बाबा को लगा चुके हो।

पृष्ठ २६ का शेष **सफलता हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है**

दूसरों के भरोसे नहीं। आज तक जो भी महान् हस्तियाँ इस संसार में होकर गई हैं क्या उन्होंने कभी किसी के आगे मदद के लिए हाथ फैलाया था? कभी नहीं। इसी विशेषता से वे कीर्त्ति के शिखर पर पहुँच गए हैं।

पुनीत — भैया आपकी ये अनमोल बाते सुनकर मुझे ऐसा एहसास हो रहा है कि सफलता मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है। भैया, आपके साथ मुलाकात होने से सचमुच जो घोर निराशा के घने बादल मेरे मन पर मंडरा रहे थे वो हट गए जिससे एक अनोखी दिव्य रोशनी मैंने पाई। इस दिव्य रोशनी ने मेरा शनि का ग्रह सदा के लिए दूर कर लिया। मुझे पूर्ण निश्चय है कि मैं अपनी सम्पूर्णता की मंजिल पर सफलता का झंडा अवश्य लहराऊँगा। आपने मुझ बेजान में जान भर दी, इसलिए आपको लाख-लाख शुक्रिया''''

विपिन — नहीं, नहीं, पुनीत भैया, ये शुक्रिया मुझे नहीं, उस ज्ञानसूर्य परमात्मा शिव को दो जिससे मैंने भी दिव्य रोशनी पाई है। मैंने तो उन्हों की दी हुई रोशनी आपको दी। इसलिए आइए, हम दोनों मिलकर उस दया के सागर परमात्मा का लाख-लाख शुक्रिया अदा करें।

पृष्ठ २३ का शेष **मन्मनाभव ही क्यों..**

से आने में कितना समय लगता है। यानी चुटकी बजाते ही वह हमारे पास या हम उसके पास। बाबा क्षण भर में किसी भी आत्मा का पोतामेल (यानी लेखा-जोखा) देखता रहता है। फिर चाहे किसी आत्मा की भंडारी में चिल्लर (coins रेजगारी) ही क्यों न हो।

इन बातों से आगे की बात पर विचार करते हैं। तन से आदमी अपाहिज हो सकता है और धन समाप्त हो सकता है। कई बार तन बीमार होकर सेवा के योग्य नही रहता। तो सिर्फ मन ही एक ऐसा है जो अपना साथ दे सकता है। दोनों के अभाव में आप सिर्फ मन से याद कीजिए परमात्मा को, वह इस याद से ही आपको स्वस्थ करेगा और खजानों से आपको मालामाल कर देगा। धन साथ छोड़ सकता है, तन का हिलना-डुलना बंद हो सकता है। तो बाबा स्पष्ट कहते हैं — "बच्चे कुछ भी नहीं रहा तो मन से मुझे याद कर। मन ही तुम्हारी वास्तविक शक्ति है। मुझे मन से ही प्राप्त किया जा सकता है, धन से नहीं। मेरा नाम ही है गरीब-निवाज और गरीब के पास धन नहीं होता, सिर्फ मन होता है"।

हम प्राय: देखते हैं — इस ज्ञान में खाते-पीते, दुनियावी सुख भोगने वाले हजारों में से एक आएँगे लेकिन दुनिया वालों से दु:खी, परिवार वालों से परेशान, निर्धन आत्माएँ अधिक आती हैं। दुनिया के बन्धनों, लौकिक प्यार के नशे में चूर रहने वाले प्रभु के दिलतख्त पर नहीं बैठते। प्रभु तो कहते हैं — 'मन मुझे दे दो, दिल दे दो, मैं हूँ ही दिलाराम। मुझे साफ-सुथरा, सम्पूर्ण दिल चाहिए, टुकड़े-टुकड़े वाला नहीं, छेदों वाला नहीं'। यह तभी सम्भव है जब मन-मना-भव के महामन्त्र पर अमल करेंगे।

मनुष्य की बाह्य आकृति आत्मा की प्रतिकृति है

ले०—ब्र०कु० ओम प्रकाश, बाँदा

प्रायः आप सभी ने अनुभव किया होगा कि किसी भी मनुष्य के हाव-भाव, उसकी बातचीत, चेहरे के गठन तथा उसकी चलन से उसकी आत्मा में चल रहे विचारों आदि का अनुमान लगाया जा सकता है। मनुष्य की आत्मा जो मन, बुद्धि एवं संस्कारों की शक्ति से सम्पन्न बिन्दु-रूप, ज्योति स्वरूप है, के सम्बन्ध में अनुभवी व्यक्ति किसी भी व्यक्ति के बाह्य स्वरूप से काफी कुछ सही जानकारी प्राप्त कर लेता है।

उपरोक्त बातों को गहराई से समझने के लिये हमें आत्मा के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी होना आवश्यक है। सच पूछा जाये तो मनुष्य इस सम्बन्ध में तब तक अल्पज्ञ बना रहता है, जब तक कि पुरुषोत्तम संगमयुग अर्थात् वर्तमान समय में ही स्वयं निराकार परमपिता परमात्मा शिव ब्रह्मा तन के माध्यम से हम मनुष्यों को जानकारी नहीं प्रदान कर देते। उन कल्याणकारी शिवबाबा ने जो ज्ञानकारी हमें प्रदान की है, प्रस्तुत लेख उसी के आधार पर है।

आत्मा, मन, बुद्धि व संस्कारों की सम्मिलित शक्तियों का ही दूसरा नाम है। जीवित मानव दो शक्तियों के योग से बना है। एक है—शारीरिक शक्ति अर्थात् जड़ तत्वों की शक्ति। दूसरी है—आत्मिक शक्ति अर्थात् चेतना।

जड़ तत्वों की शक्ति

सभी इस सत्य से परिचित हैं कि शरीर का गठन पंच तत्वों से हुआ है। इन्हीं पंच तत्वों अर्थात् क्षिति, जल, पावक, गगन व समीर का और अधिक बारीकी से विश्लेषण करके 'मैण्डलीफ' नामक महान् वैज्ञानिक ने इन्हें १०८ तत्वों में संगठित तरीके से बाँटा है और एक चार्ट का निर्माण किया, जो 'मैण्डलीफ-टेबल' के नाम से प्रसिद्ध है। इन तत्वों के सम्बन्ध में उन्होंने यह दर्शाया है कि सभी तत्वों के अणु इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन तथा न्यूट्रोन नामक शक्ति सम्पन्न कणों से बने हैं। इन्हें साधारण तया अलग नहीं किया जा सकता। सभी तत्व बाह्य रूप से अलग-अलग इसीलिये दिखाई देते है क्योंकि इनमें इलेक्ट्रोन नामक कणों की संख्या तथा संरचना अलग-अलग है और ये सभी सिलसिलेबार तथा व्यवस्थित हैं॥

यह एक महान् वैज्ञानिक सत्य है कि संसार की जितनी भी वस्तुयें दिखाई देती हैं वे सभी इन्हीं इलेक्ट्रोन, प्रोटोन व न्यूट्रोन नामक जड़ शक्ति कणों की शक्ति से मिल कर बनी है। इनमें से इलेक्ट्रोन तो इतना शक्तिशाली है कि उसे आवेशित (Charge) किए जाने पर वह अपने ही स्थान पर १,८६,००० मील अथवा ३,००,००० कि०मी० प्रति सेकन्ड की गति से डोलायमान होता रहता है। अब आप कल्पना कीजिये किसी जड़ तत्व के सूक्ष्मतम अणु के इन कणों में कितनी बड़ी शक्ति नीहित है, और इन्हीं कणों के एक निश्चित संख्या में एकत्रीकरण तथा संयोजन से इतने अच्छे मानव शरीर का निर्माण होता है।

इन जड़ तत्वों की शक्ति का अनुमान लगाना व इनका अनुभव करना—आज के इस वैज्ञानिक युग में अति सहज है। आप बिजली के तारों में करेन्ट (Current) दौड़ता हुआ अनुभव करते हैं, सूर्य की किरणों को जो कि पृथ्वी से करीब १० करोड़ मील दूर है, पृथ्वी पर ९ मिनट के अन्दर पहुंचता देखते हैं अथवा किसी दूर देश में चल रहे रेडियो व टेलीविजन के कार्यक्रमों को घर बैठे सुनते, देखते हैं। तो यह सभी उन्हीं तीन लाख कि०मी० प्रति सेकन्ड की गति से आन्दोलित इलेक्ट्रॉन नामक कणों का ही कमाल हैं। तो यह है जड़ तत्वों की शक्ति की तीव्रता और यही शक्ति पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। विज्ञान की उचित और विस्तृत जानकारी न होने के कारण बहुतायत में आध्यात्मिक लोग इन्हीं जड़ तत्वों की शक्ति को आत्माओं अथवा परमात्मा की शक्ति समझने की भूल कर बैठते हैं।

आत्मा एक चेतन शक्ति है

दूसरी शक्ति है—आत्मा, जो शरीर का संचालन करती है और इसी के माध्यम से देखने, सुनने, बोलने का कार्य ही नहीं करती वरन् दृश्यों को एकत्रित करने, आवाज़, गंध का ज्ञान, स्वाद व स्पर्श के ज्ञान को भी अपने में तिरोहित (Imerge) कर लेती है।

आत्मा जो कि चैतन्य शक्ति है, मन, बुद्धि व संस्कारों की शक्ति से सम्पन्न हैं।

मन

मन का कार्य सर्वविदित है—संकल्प, विकल्प करना। तो मन निरन्तर कोई न कोई संकल्प रचता ही रहता है, भल वह

ऋणात्मक हो या गुणात्मक। जब मनुष्य सोता हुआ दिखता है तो भी कई बार आत्मा चिन्तन में लगी रहती है, आत्मा तो सदा जागती ज्योति ही है।

बुद्धि

आत्मा की दूसरी शक्ति है—बुद्धि। इस शक्ति द्वारा कोई भी आत्मा मन के अन्दर चल रहे चिन्तन को दिशा देने का कार्य अथवा उसे संतुलित करने का कार्य करती है। बुद्धि रूपी शक्ति मन को दिशा निर्देश देती है, जिससे मन उसकी आज्ञा के अनुसार शरीर के कन्ट्रोल रूम अर्थात् मस्तिष्क के माध्यम से शरीर के अंगों को इलेक्ट्रानिक विधि सदृश कर्त्तव्य करने का निर्देश देता है और इस प्रकार मानव शरीर संचलन में आ जाता है। आत्मा शरीर के माध्यम से ज्ञान को देने तथा लेने का कार्य अर्थात् ट्रांसमिशन (Transmission) व रिसीविंग (Receiving) का कार्य करती है।

इस बात का स्पष्ट अनुभव केवल इस बात से ही किया जा सकता है—जब आत्मा शरीर से निकल जाती है, तो शरीर कुछ भी क्रिया करने में असमर्थ होता है या यों कें स्पन्दन-हीन हो जाता है। तो क्या इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि आत्मा ही शरीर को संचालित कर रही होती है? और वही हम हैं।

संस्कार

आत्मा की तीसरी शक्ति है संस्कारों की। यह संस्कार आत्मा में ही भरे होते हैं। इनके बारे में मोटे तौर पर तो सभी जानकारी रखते हैं, पर मैं थोड़ा और बारीकी में ले चलने का प्रयत्न करता हूँ। क्या मैं पाठकों से पूछ सकता हूँ कि आप किसी भी दूसरे मनुष्य को क्यों पहचानते हैं? जब एक बार पहचान हो जाती है तो उसे पहचानते ही रहते हैं। तो आखिर जब हम किसी नये व्यक्ति, वस्तु या उनको सम्मिलित रूप से देखते हैं, तो हम आत्माओं में क्या असर हो जाता है? संभवत: मेरी बात अटपटी लग रही होगी? वास्तविकता तो यह है कि जब हम आत्मायें आँखों के माध्यम से किसी की ओर देखती हैं तो हम आत्माओ में उसका दृश्य, चित्र या फोटो अंकित हो जाता है। ये चित्र प्रत्येक मनुष्य में एक सैकन्ड में १५ से ३० एकत्रित होते रहते हैं। औसत यदि २० फोटो प्रति सेकन्ड माना जाये जिस गति से सिनेमा में रील चलती है, और साधारण मनुष्य का जागरण २४ घण्टे में से १८ घण्टे का माना जाये तो प्रत्येक आत्मा में एक दिन में करीब ११,९६,००० चित्रों का एकत्रीकरण हो जाता है। और जब आत्मा ६ घण्टे शरीर से सोने का कार्य लेती है, तो भी वह स्वयं पूर्व में एकत्रित चित्रों के पुनरावलोकन में व्यस्त हो जाती है, अर्थात् आत्मा में इस सोने की अवस्था में भी चित्र एकत्रित होते रहते हैं—दुबारा-दुबारा। इसी स्थिति को लोग चिन्तन या स्वप्न की संज्ञा देते हैं। वास्तव में आत्मा तो सदा ही जाग्रत अवस्था में रहती है। इस स्थिति में आत्मा बाह्य दुनिया से अलग आन्तरिक दुनिया में विचरण करती है, शरीर के माध्यम से देखने, सुनने, बोलने आदि आदि के सर्वसाधारण कार्य बन्द रहते हैं।

शरीर का कैमरे अथवा कैसेट प्लेयर की भाँति उपयोग

आत्मा मानो फिल्म व कैसेट की तरह कार्य करती हैं और शरीर से कैमरे व कैसेट-प्लेयर की तरह कार्य कराकर आखों व कानों के माध्यम से (जैसे कि कैमरे में लेंस व कैसेट प्लेयर में आवाज भरने व निकालने के लिये माइक व साउण्ड बाक्स होता है) अपने अन्दर चित्रों व विभिन्न आवाज़ों को एकत्रित करती रहती है इस प्रकार औसतन १८ घण्टे के जागरण के दौरान आत्मा में १-१ घण्टे चलने वाली १८ कैसेट के बराबर ध्वनि अंकित हो जाती है। किस मानव आकृति से किस प्रकार की आवाज आयेगी, इसका अनुभव इसी शक्ति के द्वारा होता है। आप यह सत्य जानकर आश्चर्य करेंगे कि जो बहरे होते हैं, वही गूंगे होते हैं। अर्थात् जिन्होंने आवाज नहीं सुनी वे आवाज को मुख से नहीं निकाल सकते।

अन्य कार्य भी जो (जैसे की स्वाद, गन्ध व स्पर्श आदि) आत्मा करती है, वह भी मानो आत्मा में लिखते जाते हैं, छप जाते हैं या कहिये कि एकत्रित होते रहते हैं। इसके सम्मिलित रूप से जो मानव में समझ पैदा होती है, उसे विवेक कहते हैं।

इसका स्पष्ट अनुभव आप सभी को इस कल्पना से हो जायेगा—जब आप यह सोचने लगें कि यदि मेरा यह शरीर अभी छूट जाये तो मुझ आत्मा के साथ क्या जायेगा? सुनिश्चित है, कोई भी जमीन, जायदाद और यहाँ तक कि शरीर भी नहीं। किन्तु जायेंगे आत्मा में ११,९६,००० प्रतिदिन छापे गये चित्र, विभिन्न आवाजें व स्वाद, गंध, स्पर्श के ज्ञान आदि-आदि।

तो यही है वे संस्कार जो हमारी धरोहर है, जो हम आत्माओं के साथ जाते हैं तय करते हैं कि 'इन्हें भोगने वास्ते हमारा अगला मानव शरीर कैसा बनेगा—गोरा या काला, रोगी या निरोगी, सकलांग या विकलांग। परिवार कौनसा होगा—संपन्न या विपन्न। कैसी प्राप्तियां होंगी, यह सभी संस्कारों अर्थात् आप द्वारा एकत्रित की जा रही फोटो, आवाजों व अन्य संस्कारों पर एकदम निर्भर करेगा। **सोचने-विचारने की आवश्यकता है कि संस्कार ही जब हमारी गति को तय करते हैं और संस्कार बनाने वाले हम स्वयं हैं, तो क्यों न हम श्रेष्ठता की ओर अग्रसर हों।**

मानव जन्म

मानव जन्म की सामान्य प्रक्रिया तो यही है जब एक मनुष्य-आत्मा जिस दिन शरीर छोड़ती है, तो उसके करीब

साढ़े चार माह पूर्व ही वह आत्मा अपने पुराने शरीर में भृकुटी मध्य बैठी हुई, रिमोट कन्ट्रोल (Remote Control) की शक्ति से अपनी अगली होने वाली माँ के गर्भ में इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन अर्थात् सूक्ष्म अणुओं का प्रक्षेपण अर्थात् जमा करना प्रारम्भ कर देती है। अर्थात् जब यह पिण्ड साढ़े चार माह का हो जाता है तो आत्मा अपने पुराने शरीर को छोड़ देती है। फिर तेरह दिन (हिन्दुओं में तेरह) या २४ दिनों के अन्दर (मुसलमानो में चौबीस) आत्मा अपने नये बन रहे शरीर रूपी मकान या पिण्ड जो उसकी होने वाली माता के गर्भ में बढ़ रहा होता है, में प्रवेश कर जाती है। यह पिण्ड उस समय तक ५ माह से ज्यादा आयु का हो चुका होता है। आत्मा उस गर्भजेल में ४ माह रहकर, ९ माह का शरीर लेकर इस संसार में पुनः अपना पार्ट बजाने के लिये गर्भ से बाहर आती है।

यह जो शरीर तैयार होता है, वह ठीक उसके पूर्व के अनेक जन्मों के एकत्रित संस्कारों के अनुरूप ही बनता है, और इसीलिये यह बात कहना सर्वथा उचित लगता है—"मनुष्य की बाह्य आकृति आत्मा की प्रतिकृति है।"

उपरोक्त बातों को समझने से एक तथ्य और उजागर होकर सामने आता है। वह यह कि अपने अगले जन्म के मानव शरीर के निर्माण का कार्य स्वयं हमारे अपने हाथ में है, न कि परमात्मा के। परमात्मा को तो श्रद्धा व स्नेह वश ही यह श्रेय दे दिया जाता है कि 'यह सब तेरी कृपा का फल है।' सत्य तो यह है कि परमात्मा तो जड़ तत्वों से खेलता ही नहीं है।

कहने का आशय यही है कि यह सर्वथा मनुष्य के हाथ में है कि वह अपने अगले जन्म के मानव शरीर का निर्माण जिस प्रकार से चाहे कर ले, उसे जितना भी सुन्दर, सुदृढ़ बनाना चाहे, बना ले। तभी तो शिवबाबा हम बच्चों के प्रति कहते हैं—"मिठे बच्चे, मुझे याद कर अपने संस्कारों को पवित्र बनाओ तो स्वतः तुम श्रेष्ठ देवी-देवताओं सदृशच सुन्दरतम, हृष्ट-पुष्ट, निरोगी, १५० वर्षों से अधिक आयु वाला शरीर निर्माण कर, उसके माध्यम से अपने-अपने पार्ट को श्रेष्ठ रीति बजा सकोगे। तुम इस प्रकार प्रकृतिजीत बन सम्पूर्ण जड़ सृष्टि पर अपना वर्चस्व कायम रख सकोगे और कर सकोगे सतयुगी संसार का निर्माण जो तुम्हारे अपने हाथों में है।" ■

योग द्वारा उपचार

सतीश कुमार, आबू पर्वत

परमपिता को याद किये जा,
मुश्किल को आसान किये जा।
प्यारे पिता को तू याद किये जा,
जीवन-चमन आबाद किये जा।।

दुआयों से जीता है जो बेफिकर है,
दुआ के बिना हर दवा बेअसर है।
सेबा से सबकी दुआयें लिए जा-प्यारे पिता···।

न तुम कर्मभोगी, न यह भोगना है,
मगर कर्मयोगी की इक योजना है।
याद की मस्ती का स्वाद लिए जा-जीवन चमन···।

चिन्ता चिता है, दुःखी-चित्त-चंचल,
योगी तो रहता सदा शान्त-शीतल।
मन ओमशान्ति से शान्त किये जा-प्यारे पिता···।।

पृष्ठ १५ का शेष **"ज्ञान योग, कर्म योग, संन्यास योग"**

हैं उसके स्वरूप का, उसके साथ निज स्वरूप के सम्बन्ध इत्यादि का परिचय (ज्ञान) तो उनको भी प्राप्त होता ही है। वरना उनका मार्ग 'कर्म-योग' नहीं कहा जा सकता-अतः ज्ञान तो उनमें भी होता है गौण होना अलग बात है। मन से विषय-विकारों का संन्यास भी वे करते ही हैं। तब मार्गों की परिछिन्न भिन्नता यानी अनेकता कहाँ ठहरी? ऐसे ही, कोई व्यक्ति ज्ञान-प्रधान न होकर यदि वृद्ध होने के कारण कर्म में भी अधिक तत्पर न रह सके, बल्कि उनका मनोयोग अथवा विषय-विकारों से मन का संन्यास पूर्ण हो तो उसे मुख्य रूप से 'संन्यास योगी' कहेंगे। परन्तु ज्ञान के बिना वह मन किस में, क्यों और किसी रीति से लगा सकता है? अतएव यह निश्चित जानिये कि इन तीनों नामों से एक ही अभीष्ट मार्ग हैं-"ज्ञान योग, कर्म योग, संन्यास योग।" यही एक मार्ग ईश्वर द्वारा मुक्ति और जीवनमुक्ति की प्राप्ति का मार्ग है। अन्य मार्ग, जैसे कि हठ योग, तत्व योग आदि-आदि मनुष्य-कृत हैं, उन्हें श्रेष्ठ मार्ग नहीं कहा जा सकता। ■

बम्बई—(बोरीवली) सेवाकेन्द्र पर कुमारियों के लिए आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम में उपस्थित कुमारियां ग्रुप फोटो में अन्य सीनियर ब्र० कु० बहनों के साथ दिखाई दे रही हैं।

पृष्ठ 1 का शेष

अगर मनुष्य में कभी लोभ का संकल्प उठता है और वह सोचता है कि पदार्थों में मिलावट करके अथवा कम तोल कर मैं अधिक धन बटोर लूँ तो ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने के बाद वह सोचता है कि ऐसा विकर्म करने के फलस्वरूप तो मुझे भी धर्मराजपुरी में दण्ड मिलेगा और अभी यदि मैं थोड़ी सम्पत्ति इस अनुचित व्यवहार से इकट्ठी कर भी लूँगा तो मैं मुक्ति और जीवन्मुक्ति के वरदान से वञ्चित रहूँगा। वह सोचता है कि लोभ करना तो गोया परमपिता परमात्मा तथा अपने बीच खाई खोदना है और उस सुखदाता से दूर होना है। इस प्रकार ज्ञान-मंथन करके वह लोभ को छोड़ कर सात्विक रीति से ही कमाई करता है और अपनी लोभ वृत्ति को अधिकाधिक ईश्वरीय ज्ञान रूपी धन इकट्ठा करने में तथा ईश्वरीय याद रूपी कमाई करने में ही लगाता है।

सिकन्द्राबाद (आ०प्र०)—ब्र०कु० लीला जी ब्र०कु० विश्व रत्न जी के सेवाकेन्द्र पर आगमन पर उन्हें ईश्वरीय सौगात देते हुए।

मथुरा—चिकित्सक दल के मथुरा आगमन पर डॉ० अनिल, बृज चिकित्सा संस्थान में रोगियों को परामर्श देते हुए।

हुबीनाहब्रगली—'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' के अन्तर्गत हुए आध्यात्मिक समारोह का उद्घाटन दृश्य।

जगदीश चन्द्र हसीजा, मुख्य सम्पादक, ब्र० कु० आत्म प्रकाश, सम्पादक, बी ९/१९ कृष्णानगर, दिल्ली द्वारा सम्पादन तथा ओम शान्ति प्रैस, कृष्णानगर, देहली-५१ से छपवाया Regd No. 10563/65-D, (E)—70